ओ३म्

द प्रकाश

वेदार्थ-विज्ञान

विशेषांक

वर्ष २१ नवम्बर १९७२ वार्षिक मूल्य ३-००
अंक ४ दीपावली २०२९ इस अंक का १-००

ओ३म्

वेदार्थ विज्ञान

वेदप्रकाश विशेषांक

लेखक
रामशरण वशिष्ठ
वेदश्रमी

गोविन्दराम हासानन्द
नई सड़क, दिल्ली-६

प्रकाशक
गोविन्दराम हासानन्द
वेदप्रकाश कार्यालय
नई सड़क, दिल्ली-६

संस्करण : प्रथम
दीपावली १६७२

मूल्य : एक रुपया

मुद्रक
बदलिया प्रिंटिंग प्रेस
नई सड़क दिल्ली-६

विषय-सूची

		पृष्ठ संख्या
१.	वेदार्थ विज्ञान (भूमिका)।	५
२.	वेद में देवतावाद।	९
३.	वेद में अग्नि का स्वरूप।	११
४.	वेद में सूर्य का स्वरूप।	१३
५.	वेद में इन्द्र का स्वरूप।	१७
६.	वेद में सोम का स्वरूप।	२१
७.	वेद में वरुण का स्वरूप।	२४
८.	वेद में मरुत् का स्वरूप।	२६
९.	नारी और वेद	२८
१०.	वेद में वृषभ शब्द का प्रयोग	३३
११.	वेद में अश्विनौ का स्वरूप।	३४
१२.	वेद में रुद्र का स्वरूप	३६
१३.	वेद में यम के अर्थ।	३८
१४.	वेद में प्राण का स्वरूप।	४०
१५.	वेद में अमृत का स्वरूप।	४३
१६.	वेद में पितर के अर्थ।	४६
१७.	वेद में गौ शब्द।	४९
१८.	वेद में अश्व के शब्द।	५१
१९.	वेद में संयुक्त शब्दों के अर्थ।	५४
२०.	वेद में विश्वदेवा वा विश्वकर्मा।	५७
२१.	वेद में गंधर्व वा अपसरा के अर्थ।	६०

संकेत

ऋग्वेद	ऋ०	R.
ययुर्वेद	य०	Y.
अथर्वेद	अ०	A.
सामवेद	सा०	S.
शतपथ ब्राह्मण	श० ब्रा०	Sh. Br.
निरुक्त	नि०	Mir.
गीता	गी०	G·
उपनिषद्	उप०	Up.

लेखक की अन्य रचनाएँ—

१. Vedic Conception of God.
२. Vedic Conception of Soul.
३. Vedic Prayer Veres.
४. वैदिक विवाह और वैवाहिक जीवन।
५. वेद में पशु हिंसा विषयक पाश्चात्य विद्वानों के लेखों की समालोचना

ओ३म्

वेदार्थ-विज्ञान

विभिन्न विद्वानों तथा भाष्यकारों ने वेद मन्त्रों के अर्थ भिन्न-भिन्न किये हैं। इन अर्थों में भेद होने के कई कारण हैं। वैदिक शब्दों के अर्थों की अज्ञानता, उनके अपने पूर्व-ग्रह, अर्थ करने की उनकी अपनी शैली, ये कुछ कारण हैं। कुछ अन्य कारण भी हो सकते हैं।

वेद-मन्त्रों का ठीक-ठीक अर्थ न करने से वेदों के गौरव पर उसका प्रभाव पड़ता है तथा अज्ञान विस्तार पाता है।

वैदिक शब्दों के अर्थ तीन प्रकार के होते हैं। रूढि, यौगिक तथा योगरूढि। अर्थ करने से पूर्व इस बात का ध्यान रखना अति आवश्यक है कि वेद में शब्द प्रायः रूढ़ि अर्थ देते हैं। शब्दों के धात्विक अर्थ (Root meanings) होते हैं। उनके प्रयोग से यह देख लेना चाहिए कि कौन से अर्थ लगेंगे। लौकिक तथा प्रचलित अर्थ लगाने से भ्रान्ति हो जाती है। फिर यह भी देखना आवश्यक है कि मन्त्र किस स्थान पर आया है। वहाँ विषय क्या है तथा मन्त्र का देवता क्या है। इन बातों का ध्यान न रखने पर मन्त्रों के अर्थ ठीक न होंगे।

प्राचीन काल से ही वेद-मन्त्रों के अर्थ करने की भिन्न-भिन्न शैली चली आई है। आधुनिक काल में भी कई शैलियाँ चली हैं।

समय बीतने के साथ-साथ वेद का ज्ञान कम होता गया तथा लोग मन्त्रों के वास्तविक अर्थ भूल गये। तब मनमाने अर्थ किये जाने लगे और वेद का वास्तविक रूप लोप हो गया।

प्राचीन ग्रंथ, जिनसे वेद मन्त्रों के अर्थ समझने में हमें सहायता मिलती है, शतपथ ब्राह्मण, यास्काचार्य का निरुक्त, ब्राह्मणग्रन्थ और शौनक इत्यादि विद्वानों द्वारा रचे ग्रन्थ एवं पाणिनि का व्याकरण हैं। इनमें भी कहीं-कहीं अर्थों में भिन्नता है। इस कारण अर्थों की जाँच करनी आवश्यक है। निरुक्त की शैली जो धात्विक अर्थों की शैली है, सर्वोत्तम है। इसको (Philological) अथवा (Etymological) के नाम से बताया जाता है।

कई भाष्यकार वेद मन्त्रों में इतिहास, कथा, गाथाएँ, राजाओं का वर्णन, आर्य-दस्यु युद्ध, देवताओं की पूजा इत्यादि समझकर वैसे ही अर्थ करते रहे हैं। इसको (Historical method) कहा जाता है।

एक अन्य शैली है जो कुछ विद्वान् वेदों के अर्थ करने मे प्रयोग करते हैं, उसे (Scientific method) कहते हैं। इन विद्वानों का विचार है कि वेदों में विज्ञान (Science) इत्यादि सब-कुछ लिखा है। इस कारण अर्थ करते समय वे यही प्रयत्न करते हैं।

इनके अतिरिक्त एक अन्य शैली भी है जिसे यौगिक कहते हैं। यह शैली सायणाचार्य की है। सायणाचार्य के भाष्य के विषय में योगी अरविन्द लिखते हैं :

Either the Veda is what Sayan says it, and then we have to leave it behind for ever, as a document of mythology and rituals which have no longer any force or truth for thinking minds.

अर्थात्—यदि वेद ऐसे ही हैं जैसे सायण हमें बताता है, तब तो हमें सदा के लिए उन्हें छोड़ना पड़ेगा। वह केवल कर्मकाण्ड और देवतावाद से भरे हैं। फिर तो उनसे विद्वानों को सत्य की जाँच वा धर्म के निर्णय का लाभ प्राप्त नहीं है।

इस शैली को (Ritualistic method) कहते हैं। प्रोफेसर विल्सन ने वेदों का भाष्य करने में इसी शैली को आधार बनाया है।

एक और शैली भी है जिसे (Intutional method) कहा जाता है। यह ढंग योगी पुरुष प्रयोग में लाते हैं। वेद मन्त्रों के अर्थ जानने के लिए वे योग करते हैं। जहाँ किसी मन्त्र के अर्थों में उन्हें कठिनाई

हुई वे योग का आश्रय लेते हैं। यास्काचार्य तथा स्वामी दयानन्द ने जब किसी मन्त्र के अर्थ करने में कठिनाई अनुभव की, यह शैली अपनाई है।

वेद मन्त्रों का अर्थ करने के लिए एक नवीन शैलो भो अपनाई गई है जिसे ग्रिफिथ इत्यादि विद्वान् (Modern method) कहते हैं। इसके बारे में डॉ० ग्रिफिथ लिखता है :

'Our object is not to arrive at any understanding of the Veda which was current some centuries ago, but to search out the sense which the sages have themselves put in the verses.'

For this purpose he takes help of all the various methods such as tradition, etymology, text of verses before and after the knowledge of language—to arrive at the sense which a verse contains. He decries the mode of science and others. For his interpretation of Vedas, he does not claim any finality or completeness of infallibility. He says 'A complete success, if ever attainable, can be attained only by labours of generations of scholars. He thinks that a comparative study of philology is useful for this purpose.

अर्थात् वेद मन्त्रों का अर्थ करते समय हमारा लक्ष्य यह जानना नहीं हो कि कई शताब्दी पूर्व इनका क्या अर्थ किया जाता था, प्रत्युत यह होना चाहिए कि उन ऋषियों ने जिन्होंने ये ऋचाएँ लिखीं, उनका क्या भाव था।

इसीलिए ग्रिफिथ ने उन सब साधनों का आश्रय लिया है, जैसे रवायती अर्थ, धातु अर्थ, मन्त्र का स्थान, संस्कृत का ज्ञान आदि। उसने सायण के अर्थों को आधार नहीं बनाया। परन्तु साथ ही उसने स्वीकार किया कि मेरे अर्थ सही हैं अथवा पूर्ण हैं, ऐसा मेरा दावा नहीं है। उसने यह भी लिखा है कि वेद का भाष्य करना किसी एक व्यक्ति का काम नहीं। इसके लिए कई विद्वानों को मिलाकर चिरकाल तक सतत प्रयास करना होगा। उसका यह भी विचार

था कि संसार की प्राचीन भाषाओं का ज्ञान भी भाष्य में लाभदायक सिद्ध होगा।

इसमें सन्देह नहीं कि वेदों के सही अर्थ करने के लिए ज्योतिष-विज्ञान, भूमि-विज्ञान, सूर्य-विज्ञान, विद्युत्-विज्ञान, वृष्टि-विज्ञान इत्यादि की जानकारी आवश्यक है।

वेद ज्ञान का अक्षय कोष हैं। वेदों में आध्यात्मिक, दैविक और प्राकृतिक ज्ञान का उत्कृष्ट भण्डार है। वेदों में ईश्वर, आत्मा तथा प्रकृति सम्बन्धी वर्णन अति गहन तथा विस्तार से है। वेदों में गृहस्थ, राजधर्म, आयुर्वेद सम्बन्धी मन्त्र हैं। वेद में निहित अध्यात्म अर्थों को जानना आवश्यक है।

पाठकगण ! इन भावों से प्रेरित होकर मैंने वेदार्थ के विषय में यह प्रयास किया है। मुझे आशा है आप इससे लाभ उठाएँगे।

रामशरण वशिष्ठ
ए–२/५ सफदरजंग ऐन्क्लेव
नई दिल्ली—१६

वैदिक देवतावाद

वेदों में ऐसे बहुत से शब्द हैं जो परमात्मा के वाचक कहे जाते हैं अर्थात् परमात्मा के गुणों का वर्णन करते हैं। जैसे अग्निर्ब्रह्म, इन्द्र, मित्र, वरुण, पूषण, भग, रुद्र, बृहस्पति, प्रजापति, यम, वायु, आदित्य, सूर्य, चन्द्र, सोम, अर्यमन्, त्वष्टा, विष्णु, मरुत्, मातरिश्वा, अश्विनी, सविता, आपः इत्यादि। इनके अतिरिक्त सरस्वती, उषा, इडा, महि, सिनीवाली भी हैं। इन शब्दों को देखकर तथा इनके सम्बन्ध में जो मन्त्र हैं, उनमें आये हुए वर्णन को पढ़कर पाश्चात्य विद्वानों तथा उनके अनुयायी भारत निवासियों ने यह समझ लिया है कि वेद में भिन्न भिन्न देवताओं की मान्यता है; भिन्न भिन्न देवताओं की पूजा का वर्णन है; सिद्धान्ततः वेद एक ईश्वरवाद को नहीं मानता; इसमें नाना देवी-देवताओं की पूजा है, स्तुति है। प्रार्थनाएं की जाती हैं, यज्ञों में हवि दी जाती है। इस प्रकार की भ्रान्तियां वेद के मन्त्रों के ठीक अर्थ न करने से तथा वैदिक देवतावाद का यथार्थ रूप न समझने से होती हैं। अथवा हम यह भी कह सकते हैं कि जान बूझकर दोष लगाने की भावना से भी ऐसा कहा जाता है। अथवा यह भी हो सकता है कि आज के युग की विचारधारा तथा मत-मतान्तरों के सिद्धान्तों को देखकर उनको प्राचीन समझ लेने से यह भूल की जाती है।

पाश्चात्य विद्वान् मोनियर विलियम ने लिखा है कि वेदों में Polytheism है अर्थात् कई ईश्वर माने गए हैं। मैक्समुल्लर लिखता है कि वेदों में Henotheism है अथवा One God in many and many gods in one. (एक देव में कई देव तथा कई देवों में एक देव) है। अन्य भी कई ऐसे विद्वान् हैं जो वेदों के अद्वैत को नहीं समझ सके।

सत्य तो यह है कि वेद केवल एक ब्रह्म का प्रतिपादन करता है। वेदों में कई मन्त्र आते हैं जिनसे स्पष्ट है कि परमात्मा एक है।

कई नामों से कहे जाने पर भी वह एक है। विद्वत् जन उसके गुणों के कारण उसे कई नाम देते हैं। यह सत्य इन मन्त्रों में स्पष्ट है—ऋ० १-१६४-४६; २-१-३, ४; ३-५४-८; ६-१८-४; ४-१८-४; ६-३१-२; ७-६६-२; १०-१११-५; १०-११४-५ यजु० ३२-१ अ० १३-१-१५ से २१। इनके अतिरिक्त भी कई मन्त्र हैं।

वेद कहता है, "एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति"; "एकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति" सब नाम उस ही एक को बताते हैं (ऋ० ४-३१-१); "य एको अस्ति दंसना महाँ उग्रो" (अ० ८-१-२७)। फिर कहा है 'स विश्वस्य करुणस्येश एक:' (ऋ० १-१००-७) 'अयमेक इत्था पुरूरु वि चष्टे विश्पति:' (ऋ० ८-२५-१६)।

ऋ० ३-५४-१७ में कहा है 'यद्ध देवा भवस्थ विश्व इन्द्रे' (all gods exist in Indra) अथर्ववेद में आता है 'स एष एक वृद् एक एव' (ऋ० १३-१-३०) (Vedas identify all deities (देवता) with one Supreme. (R. 2-1-3, 4, 11) सब नाम उस एक ईश्वर के नाम हैं।'

ऋ० १०-१२६ का भाष्य करते हुए पाश्चात्य विद्वान् Maternick लिखते हैं "The one breathed airless by self impulse, apart from Him, was nothing whatsoever." meaning one god.

ऐसे स्पष्ट मन्त्रों के होते हुए भी यदि कोई कहे कि वेदों में एक ईश्वर का सिद्धान्त नहीं है, वेद बहु देवी-देवताओं की पूजा सिखाता है तो इसमें उनकी भूल अथवा उनकी जिद्द ही कारण हो सकती है।

वास्तविकता यह है कि ईश्वर में बहुत से गुण हैं और उसकी बहुत सी शक्तियां हैं जो संसार में कार्य करती है और दैविक हैं। उनके नाम ही ये शब्द (उपरिलिखित) बताते हैं। अज्ञानवश उनको विभिन्न देवता बताकर कहना कि वेदों में बहु देवतावाद है सरासर भूल है।

वेद का अद्वैत इतना विचित्र और सूक्ष्म है कि उसको ठीक ठीक समझना कठिन है।

चाहे कोई भक्त उसको अग्नि कहे, इन्द्र कहे अथवा किसी अन्य नाम से स्मरण करे अथवा ध्यान करे, उसी परब्रह्म का ही उपासक है जो सारे संसार का रचयिता है, पालक है, सुख स्वरूप है, सर्व-व्यापक, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ है और सबका स्वामी है।

वेद में अग्नि का स्वरूप

वेद में अग्नि का वर्णन बहुत विचित्र और बड़े विस्तार से है। अग्नि के अनेक रूप वेद में बताये हैं। हम इनका वर्णन संक्षेप में लिख रहे हैं।

अग्नि शब्द "अञ्चु गतिपूजनयोः"। 'अग अगि इण् गतौ' अर्थ में धातु हैं जिनसे अग्नि बनता है। अग्नि के तीन अर्थ हैं। ज्ञान, गमन और प्राप्ति। पूजन करने योग्य है वह अग्नि कहलाता है।

इसी कारण अग्नि ईश्वर का वाचक है। स्वप्रकाश स्वरूप, सर्वज्ञ और ज्योतिर्मय होने से ईश्वर का अग्नि शब्द द्योतक है। वेद मन्त्रों में जैसे—यजु०—३२-१ 'तदेवाग्निः' ऋ०—२-१-३ में 'त्वम् अग्नि' ऋ० ८-५८-२ में 'एक एव अग्निः' साम०—१-८-३-१ में 'अग्निर्ज्योतिः'। अथर्व०—१३-४-५ में 'सो अग्निः स उ सूर्य्य स उ महायमः' इत्यादि।

जैसे अन्धकार रूपी अज्ञान को प्रभु दूर करते हैं ऐसे सूर्य भी संसार में रात्रि के अन्धकार को दूर करता है। इसलिए सूर्य को भी अग्नि कहा है और कई वेद-मन्त्रों में अग्नि शब्द सूर्य का बोधक है। जैसे—ऋ०—४-१-७ और ऋ०—१०-७-३ में सूर्य बनकर संसार को प्रकाश देता है। और गतिमान् है। अग्नि विद्युत् का भी वाचक है। (ऋ०—३-२६-७)।

प्रकाशमान वस्तु होने के कारण ऐसा कहा गया है और अग्नि

भौतिक अग्नि का भी वाचक है। (ऋ०—७-१-२, ८-४८--६)। और यज्ञ की अग्नि का भी वाचक है। जातवेद अग्नि को कहते हैं।

और परमाणु रूप में अग्नि वायु में, जलों में, वृक्षों में, वनस्पतियों में, पृथिवी में व्यापक है। अग्नि के परमाणु पावका अग्नि बनकर अन्तरिक्ष में अपना काम करते हैं और मरुत् कहलाते हैं। अथर्वा अग्नि बनकर संसार में अपना काम करते हैं और बिजली के रूप में अग्नि कई कार्य करता है। वर्षा का जल समुद्रों से भाप बनकर ऊपर जाकर मेघ बनकर विद्युत् के योग से चमकता है और गरजता है।

अग्नि को वेद मन्त्र (१४-२-२) में कन्या का रक्षक पति भी कहा है (Spiritual husband)। अग्नि फलों को पकाता है और भोजन को पचाता है। (अथर्व०— १९-५५-५) अग्नि कृमि आदि का नाश करके आरोग्यता का कारण बनता है। (अ० १-२८-१)

शरीरों में अग्नि (ताप) न रहे तो मृतक कहते हैं। पृथिवी की अग्नि से कई धातु बनती हैं। (A 5-28-6).

यज्ञ अग्नि देवताओं का हुत कहलाता है। (ऋ०—१-५९, ८-६३-४) हवि देवताओं तक पहुँचाता है। यज्ञ में घी, सामग्री आदि पदार्थ सूक्ष्म बनकर वायु में जाकर वृष्टि होने में लाभदायक होते हैं और कई रोग यज्ञ अग्नि से दूर होते हैं। (ऋ०—१०-५१-७) अग्नि स्तोम यज्ञ में अग्नि की प्रशंसा मन्त्र गायन द्वारा की जाती है और (ऋ०—७-४-२ में) जंगलों में वृक्षों को और तृण आदि पौधों को जलाकर भूमि को खेती के लिए साफ करते हैं। रात को शरद् ऋतु में अग्नि जलाकर सर्दी दूर करते हैं। जंगली जानवरों से रक्षा के लिए अग्नि जलाकर रखते हैं। वे आग के पास नहीं जाते। वेद के कई मन्त्रों में अग्नि के तीन रूप, तीन स्थान, तीन कारण बताये गये हैं। (ऋ०— ८-५-७) और (ऋ०—१०-४५-६) में।

अग्नि पहले द्यु-लोक से आई और भृगु ऋषि ने दो अरणियों को रगड़कर जलाया। अर्थवण ऋषि ने कंवल के फूल से अग्नि प्राप्त की।

अग्नि के स्वरूप का बहुत सुन्दर वर्णन है। जिसमें कविता और वाक् की सौन्दर्यता और भाषा की उत्तमता पाई जाती है। जैसे

अग्नि की सात जिह्वा। धूम उसका झण्डा है। अग्नि सात घोड़ों के रथ पर चलता है।

अग्नि के कई लाभ बताये हैं। अग्नि जलाती है, तपाती है, प्रकाश देती है। अग्नि गलाती है। अग्नि से धातु की शुद्धि करते हैं। अग्नि वर्षा करती है। अग्नि शब्द को दूर-दूर तक ले जाती है। अग्नि जल को भाप बनाती है। भूमि की अग्नि बीज को उगाती है। इन सब गुणों के कारण अग्नि के वेद मन्त्रों में कई नाम आते हैं। 'जातवेद अग्नि', 'वैश्वानर अग्नि', 'इक्षोवाह अग्नि', 'जठराग्नि', 'आहवनीय अग्नि', 'पावक अग्नि', 'गार्हपत्य अग्नि', 'दक्षिणा अग्नि', 'सोम अग्नि', 'अथर्व अग्नि', 'काव्य अग्नि'।

काव्य अग्नि' का भयंकर रूप है। वह मृतक शरीर को जलाती है। मनुष्य को चाहिए कि अग्नि के गुणों की जानकारी प्राप्त करें और लाभ उठायें।

वेद में सूर्य का स्वरूप

वेदों में कई मन्त्रों में सूर्य का शब्द आता है। इसका बहुत अद्भुत वर्णन है। इन मन्त्रों में सूर्य शब्द के कई अर्थ होते हैं। श० ब्रा० में लिखा है—सूर्यो वै सर्वेषां देवानामात्मा। अर्थात् सूर्य सब देवों का आत्मा है। ऋ०—१·५०-१ 'दृशे विश्वाय सूर्यम्' आता है। यहां पर सूर्य परमेश्वर का वाचक है। ऋ०—१-५०-१० में भी—'देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्। इसमें भी सूर्य परमात्मा का वाचक है। परमात्मा ज्योतिर्मय प्रकाशस्वरूप है। इसी प्रकार यजु०—७-४२ में 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' अर्थात् सूर्य चेतन और जंगम का आत्मा है। यहां भी सूर्य परमेश्वर का वाचक है। ऐसे और भी कई मन्त्र हैं जो वेदों में स्थान-स्थान पर आते हैं, जिनमें सूर्य परमात्मा ज्योतिस्वरूप का द्योतक है।

इसके अतिरिक्त इस शब्द के अर्थ भौतिक सूय के हैं। अधिकतर मन्त्रों में सूर्य शब्द इसी अर्थ में आया है। सूर्य के लिए वेदों में कई शब्द आते हैं। जैसे आदित्य, सविता, विष्णु, रवि आदि। इस भौतिक सूर्य की महानता, शक्ति और लाभ का वेद मन्त्रों में बहुत विस्तार से वर्णन किया गया है। सूर्य को वसु, बसाने वाला देवता, दिव्य शक्ति वाला और ग्रह बताया गया है। अथर्ववेद के १७वें काण्ड में ३० मन्त्र आते हैं, जिनमें सूर्य की प्रशंसा है। आजकल भी कई ब्राह्मण इन मन्त्रों का नित्य पाठ करते हैं।

सृष्टि-क्रम में सूर्य की उत्पत्ति के विषय में कई मन्त्र हैं। जैसे 'सूर्या चन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।' (ऋ०—१०-१९०।३) और शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु। (ऋ०—७-३५-८) और 'यत्र सूर्य उदैति' और ओं सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा।(यजु० ३-९)। इन मन्त्रों में सूर्य भौतिक सूर्य के अर्थ में आया है।

सूर्य इस लोक का केन्द्र है। (यजु०—१७-६०) यह सारे लोक को प्रकाशित करता है; (यजु०—१२-२१) गरमी देता है; संसार में जीवन का आधार है। सारे भूमण्डल की स्थिति इस पर है। सूर्य की आकर्षण शक्ति से सब ग्रह-उपग्रह अपनी अपनी जगह पर काम कर रहे हैं। (ऋ०—१०-८५-१, २) और (यजु०—१८-४०) दिन-रात, ऋतु इन सबका कारण भी यही है। (यजु०—१७-८९) सूर्य की तपस से जलों की भाप बनकर वायु और सूर्य की किरणों द्वारा आकाश में आती है और बादल बनकर वर्षा होती हैं। (यजु०—१७-८९) सूर्य के कारण कई जीव-जन्तु मर जाते हैं और गन्दी गली-सड़ी चीजें सूख जाती हैं, जिसके कारण कई बीमारियों का फैलना रुक जाता है। सूर्य के प्रकाश में ही सारा संसार अपना अपना काम कर सकता है।

प्रातःकाल सूर्य पूर्व दिशा में दिखता है। (यजु०—१३-५६) उस ओर दिन होता है और पृथिवी के दूसरी ओर रात। सूर्य का प्रकाश सब ओर फैल जाता है। (यजु०—१७-५९) वर्षा का कारण

भी सूर्य ही है। (यजु०—१७-६०) सूर्य की रश्मियाँ कई किस्म की हैं। उनमें सात रंग होते हैं। रश्मियों को सूर्य के सात घोड़े कहा है। उसका रथ सुनहरी है। यह वर्णन आलंकारिक है। (ऋ०—१-३५-४) सूर्य प्रातःकाल से सायंकाल तक मनुष्यों के कर्मों को देखता हुआ कहा गया है। (ऋ०—१-३५-२) सूर्य के लाभदायक होने के कारण कई देशों में इसकी पूजा की जाती है। सूर्य की उत्पत्ति भी (आलंकारिक रूप में) प्रजापति की आंख से कही गई है।

(ऋ०—१०-६०-१३)।

सूर्य की किरणों का वर्णन भी वेदों में बहुत विस्तार से आता है। किरणें कई प्रकार की हैं। उनको आदित्य और अंगिरा कहते हैं। किसी को हरया कहते हैं। पं० भगवद्दत्त जी ने अपनी पुस्तक (Creation of the Universe) में बहुत विस्तार से लिखा है। सूर्य उत्पत्ति काल में पहले पृथिवी के पास था, फिर ऊँचा होता गया और जहां अब है, वहां प्रभु शक्ति ने उसे स्थिर किया। (ऋ०—३-५४-७ व १०-६५-८)।

सूर्य की गर्मी से कई बीमारियां दूर होती हैं। ऋ०—१-५०-११ में आता है कि पीलिया में सूर्य की प्रातःकाल की रश्मियां नग्न शरीर पर लेने से पीलापन जाता रहता है। सूर्य की गर्मी से पौधे उगते हैं, पलते हैं और फल पकता है। कृषि में इसका बड़ा लाभ है।

(ऋ०—१-३५-६, १०)।

सूर्य अपने धुरे पर घूमता है। (यजु०—१४-२१) और पृथिवी सूर्य के गिर्द घूमती है। (यजु०—३२-७) जब इन दोनों के बीच में कोई ग्रह व उपग्रह आ जाता है तो ग्रहण लगता है। (ऋ०—५-४०-१) सूर्य का आकार बहुत बड़ा है और वह पृथिवी से बहुत दूर है। यदि पास-पास रहते तो कोई जीव न होता। चन्द्रमा भी सूर्य को रोशनी से चमकता है। (यजु०—१८-४०) सूर्य के पास जल के अणु हैं और सोम भी है। यह जल विद्युतः (electrified) है। (१-१६४-५२) सूर्य की किरणें तिरछी चलती हैं। वह टूटकर नहीं चलतीं (ऋ०—६-५१-५)। किरणें सात रंग की हैं (५-४७-४)।

यह हमारे सूर्य का अपना लोक है। ऐसे कई लोकान्तर हैं और कई सूर्य हैं। (ऋ०—९-११४-३) इस सूर्य का वर्णन वेदों मे इतने विस्तार से है कि उसका देना यहां पर सम्भव नहीं। हमने यह संक्षेप से दिया है।

सर्य शब्द के और भी कई अर्थ हैं। सूर्य के अर्थ कुछ मन्त्रों में "विद्वान्" के होते हैं। जैसे ऋ०—१-२२-२० में—'तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। अर्थात् विद्वान् पुरुष उस प्रभु के दर्शन करते हैं। इस प्रकार (अथ०—१४-२-४६ में) 'सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय नमो। यहां पर भी सूर्य के अर्थ विद्वान् के हैं।

इसी प्रकार सूर्य के अर्थ राजा के भी हैं। इसी कारण वेद के पाठकों को ध्यान रखना चाहिए कि सूर्य के अर्थ किस मन्त्र में क्या हैं, उसको जानें। नहीं तो उलझन में पड़ जायेंगे।

वेद में इन्द्र का स्वरूप

अग्नि के पश्चात् वेद में इन्द्र की प्रधानता है। अग्नि की न्याईं यह भी वेद-मन्त्रों में कई स्थानों पर परमात्मा का वाचक है। जैसे **इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुर०—'** (ऋ० १-१६४-४६); **'त्रातारमिन्द्र-मवितारमिन्द्रं हवे हवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।'** (ऋ० ६-४७-११); **'एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना ।'** (ऋ० ८-९५-७); **'सकृत्सु नो मघवन्निन्द्र मृळयाधा पितेव नो भव ।** (ऋ० १०-३३-३); **'अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः** (ऋ० १०-४३-१); **'समानमिन्द्रमवसे हवामहे'** (ऋ० ८-९९-८); **'इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।** (ऋ० ७-३२-२६)।

इसी प्रकार—**'यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।** (ऋ० ८-७०-५) और **'न यं जरन्ति शरदो न मासा न द्याव इन्द्र-मवकर्शयन्ति ।** (ऋ० ६-२४-७) वेद-मन्त्रों में इन्द्र शब्द परमात्मा का वाचक है। ईश्वर के नामों में इन्द्र भी है। परमात्मा हमारा रक्षक है, शक्तिशाली है। हम यज्ञों में उसका आवाहन करते हैं। हम शुद्ध साम-गायन से उसकी स्तुति करते हैं। हे कृपालु प्रभु ! तुम हम पर कृपा करो। पिता की न्याईं हमारी सहायता करो। हे इन्द्र, परमात्मा ! हम आपकी स्तुति करते हैं। हम आपको पुकारते हैं। हे प्रभु ! आप सबके लिए समान हैं। हम आपसे याचना करते हैं। हे प्रभु ! आप हमें ज्ञान दें जैसे पिता पुत्र को देता है। प्रभु की महानता को दिखलाते हुए वेद कहता है—

'यदि सौ सूर्य हों और सौ पृथिवी हों तो भी वह आपकी तुलना नहीं कर सकते। हे इन्द्र ! आपको न वर्ष, न मास, न दिन बूढ़ा करते हैं और न दुबला करते हैं। आप सदा एकरस हैं।

इसी प्रकार और बहुत से मन्त्र हैं, जिनमें इन्द्र ईश्वर का वाचक है।

इन्द्र कई वेद-मन्त्रों में जीवात्मा का भी वाचक है। जैसे यजु० १३-३३ में '**इन्द्रस्य युज्यः सखा**—'

ऋ० १-८०-३ में इन्द्र राजा व सेनापति का वाचक है। 'इन्द्र ! तुझे कोई नहीं जीत सकता—तू आगे बढ़ और शत्रु को परास्त कर।' इसलिए इन्द्र को वेदों में—पुरुतमः, पुरूणाम्—रथीतमं रथीवाँ—मंहिष्ठः—शुष्यन्तम्, ओजिष्ठः—सुश्रुवस्तमः, श्रेष्ठः—ज्येष्ठतमः—नृतमः —विप्रतमः—इवतमः—पितृतमः पितृणाम्—नृतमः—बृहन्तम् —वरिष्ठः—वृषन्तमः—वृत्रहन् और मघवन् कहा है—जिससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन्द्र शक्तिशाली और महान् है।

यजुर्वेद १०-२८ में '**इन्द्रोऽसि विशौजा**' इन्द्र राजा का द्योतक है। राजन् ! तेरी शक्ति प्रजा से है। यजु० २५ में भी इन्द्र राजा का वाचक है। इन्द्र बड़ा शक्तिशाली वीर है (ऋ० १-८०-२)। इन्द्र के विचित्र कारनामे कई मन्त्रों में वर्णन किये गये हैं। 'इन्द्र' ने दस्यु को मारा और प्यासे तृता को जल दिया। इन्द्र ने अपाला की बीमारी दूर कर दी। उसका रोग जाता रहा। (ऋ० ८-८०-६)। इन्द्र आर्यों की वीरता का आदर्श है। वह उनका सरदार है। उसकी वीरता का एक नमूना है जो मनुष्यों के लिए आदरणीय है (ऋ० २-१२-६)। वेद मनुष्यों को आज्ञा देता है कि इन्द्र की न्याईं वीर बनो (ऋ० १०-१०३-६)। एक स्थान पर मन्त्र आते हैं जिनमें इन्द्र स्वयं कहता है, 'मैं इन्द्र हूँ। मेरा धन मुझसे कोई छीन कर नहीं ले सकता। मैं मरता नहीं—मैं सब धनों का स्वामी हूँ। मुझे मनुष्य पिता कहते हैं। जो मुझे दान देता है, मैं उसे सुख देता हूँ। मैं अपना वचन कभी नहीं तोड़ता—सदा पूरा करता हूँ। मुझसे धन-प्राप्ति की प्रार्थना करो।' (ऋ० १०-४८)।

कहा गया है कि इन्द्र श्वेत घोड़ों के रथ पर चलता है। (ऋ० ६-३९-४)। यह आलंकारिक है।

भाव यह है कि बिजली की चमक श्वेत होती है।

कई मन्त्रों में इन्द्र से प्रार्थना की गई है कि वह युद्ध में हमारी जीत कराये। हमें धन व बल दे। इन्द्र हमारी सहायता करे कि हमें

ज्ञान प्रकाश, जल, वायु, उत्तम शरीर व आयु दे। (ऋ० ६-४६-४) हे इन्द्र ! हमारे शत्रु को मारो। हमें शान्ति और सुख दो। इन्द्र ! आपके समान कोई बलवान् व बड़ा नहीं। (ऋ० ६-३०-४) हे इन्द्र ! आपसे सब भय खाते हैं। (ऋ० ६-३१-२) इन्द्र। हम आपकी सहायता से शत्रु को काबू में करते हैं और उसको भगाते हैं। (ऋ० ६-२५-२) हे इन्द्र ! हम दस्यु को हरावें। युद्ध में हमारी रक्षा करो। (ऋ० ६-२६-१)।

हे इन्द्र ! हम आपके बल को—धन को पूर्णतया नहीं जानते। (६-११-१५) हे इन्द्र ! हमें यश प्राप्त हो। (ऋ०—६-१५-१२) शत्रु से हमारी रक्षा करो—हे इन्द्र ! हमें सुखदायक घर दो—जो पक्का हो। (६-४६-१५) हे इन्द्र सोम-पान करो—हमें बलकारक भोजन दो। हमारे शत्रु को समाप्त करो। (६-१७-३) हे इन्द्र ! अपनी कृपा का हाथ व साया हमारे ऊपर करो। युद्ध में हमारे चारों ओर रहो और हमारी रक्षा करो—हमारी हानि न हो (ऋ०-६-१६-३)। युद्ध में हमारी जीत हो (६-२६-१)।

इन मन्त्रों में भी इन्द्र शब्द परमात्मा का वाचक है। एक दैवीय शक्ति है जो संसार में कई काम करती रही है और कराती है। इस शक्ति के कार्यों का वर्णन भी कई वेद-मन्त्रों में आता है। हम कुछ मन्त्रों का संक्षेप से वर्णन करते हैं। (ऋ०—२-१७-५ में) लिखा है कि इन्द्र ने भूमि और अन्तरिक्ष को स्थिर किया और गिरने से बचाया। इसी प्रकार ऋ०—६-४४-२४ और ३-३०-६ में लिखा है कि इन्द्र ने अपने बल से पृथ्वी और अन्तरिक्ष को थामा। ऋ०—१०-११३-४ में आया है कि इन्द्र ने नरक लोक को भी स्थिर किया। ऋ०—१-१११-५ में यह है कि इन्द्र ने सूर्य की सहायता से पृथ्वी और अन्तरिक्ष लोक को फैलाया। (ऋ०—२-१७-४)

पहले पृथ्वी, अन्तरिक्ष और सूर्य सब पास ही थे। इन्द्र ने सूर्य को ऊपर करने का कार्य किया। ऋ०—१-७-३। फिर (ऋ०—१-५१-४ में भी) जब इन्द्र ने वृत्र को मारा तब सूर्य ऊपर को गया।

ऋ०—८-८९-७ में भी यही है कि इन्द्र ने सूर्य को ऊंचा किया। इन्द्र ने अन्तरिक्ष को थामा है और आकाश को विस्तृत किया है।

(ऋ०—१०-१५३-३ ऋ०—१०-१११-३)।

इन्द्र शब्द कई वेद मन्त्रों में विद्युत् व बिजली के अर्थ में भी आता है। (ऋ०—१०-१५३-४) इन्द्र बादलों में चमक देता है और वर्षा करता है। इन्द्र वर्षा करके पृथ्वी पर जल-थल कर देता है। सब नदी-नाले भर जाते हैं। जंगलों को हरा-भरा करता है। (ऋ०—४-१९-३) इन्द्र ने अन्तरिक्ष और द्युलोक को एकत्रित कर रखा है। वह रात्रि के अन्धेरे को दूर करता है। यहाँ पर इन्द्र सूर्य का वाचक है। (ऋ०—६-१९-४) इन्द्र ने उषा-काल में प्रकाश किया।

इन्द्र विद्युत् है।

इन्द्र कुछ मन्त्रों में सोम का प्यारा है। (ऋ०—१०-१६०) इन्द्र सोम-रस का सेवन करता है। सोम इन्द्र को बल देता है। इन्द्र सोम-पान करके बहुत प्रसन्न होता है। इन्द्र ने सोम के तीन कलसे पिये। (ऋ०—५-२९) इन्द्र बहुत बलवान् हो गया। उसने दानव वृत्र, अहि आदि को मार गिराया। वज्र मारकर उसके दुर्ग तोड़ डाले। इन्द्र के भय से पृथिवी कांप उठी—पहाड़ फट गये। (ऋ०—२-११-५) इन्द्र ने उस शत्रु का धन-माल सब छीन लिया। (ऋ०—३-१२-५) इन्द्र ने दस्यु को मार डाला—शत्रु सब समाप्त कर दिये। जो इन्द्र के काम में विघ्न डालते थे, उनको भगा दिया। (ऋ०—६-४४-१७) अहि जो मेघों में हुआ था और वर्षा रोकता था, उसको मार डाला। वेद इन्द्र को एक वीर सेनापति तथा योद्धा की न्याईं वर्णन करता है। बार-बार उसमें बल-पराक्रम और शक्ति की प्रशंसा करता है।

इन्द्र उसकी सहायता नहीं करता जो उसकी पूजा नहीं करते। (ऋ०—६-४७-१७) इन्द्र अपने भक्तों की सहायता व रक्षा करता है। (६-४७-७) इन्द्र उन सबको परे करता है जो प्रार्थना नहीं करते। (८-५३-१) इन्द्र उनको कुचल देता है जो यज्ञ, दान आदि नहीं करते। (८-५३-२, ४-२८-२) इन्द्र उनसे प्रसन्न होता है जो उसको

सोमपान कराते हैं। (ऋ०—१०·४८-१) इन्द्र उनको सन्तान देता है जो उसकी स्तुति करते हैं। (ऋ०—४-२०) वह अवश्य उनका सहायक होता है जो उसको पुकारते हैं और यज्ञों पर आवाहन करते हैं। इन्द्र के तीर कमान सदा भरे रहते हैं। वह अपने शत्रु को वज्र मारता है और चारों ओर से तीर मारता है।

उसके बल से सब भय खाते हैं। पृथिवी, पहाड़ सब कांप जाते हैं। (२-१२-१३) इन्द्र उसको बलवान् करता है जो उसको हवि देते हैं। इन्द्र उसका मित्र होता है जो मनुष्य दान करता है। योद्धा उससे युद्ध में जीत मांगते हैं और सहायता माँगते हैं। इसी कारण वेद में ऐसे कई मन्त्र आते हैं, जिनमें वह राजा व सेनापति का वाचक है। जैसे (ऋ०—१०-१७३, १७४, १८०) सूक्तों में और (ऋ०—७-४६-२) में भी इन्द्र राजा के लिए आता है।

यही नहीं, परन्तु वेद बताता है कि इन्द्र अपने भक्तों का कष्ट निवारण करता है। इस कारण मनुष्यों को चाहिए कि वह प्रभु की भक्ति किया करें।

वेद में सोम का स्वरूप

वैदिक साहित्य में सोम के अनेक अर्थ हैं। अनेक मन्त्रों में यह परमात्मा का वाचक है। किसी स्थान पर वह राजा का द्योतक है। चन्द्र को भी सोम तथा इन्दु कहा गया है। कुछ मन्त्रों में वह पति के अर्थ में आता है, परन्तु अधिक मन्त्र ऐसे हैं जिनमें सोम औषध की महिमा का वर्णन किया गया है। उसके उगने का स्थान और समय, सोम-रस निकालने की विधि और पान करने के लाभ बताये हैं। यज्ञों में इन्द्र आदि को आवाहन करके सोम की हवि देने का विधान है। सोम यज्ञ भी करते हैं। सोम एक दैवी शक्ति का भी नाम है जो संसार में उत्पत्ति काल से आती है और अपना कार्य करती है। सोम

को सूर्य का सहायक बताया है, जो उसे प्रकाश देता है। सोम द्वारा ही वनस्पति अर्थात् वृक्षों का उद्भव हुआ। सोम के अणु पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक तक जाते हैं। वहां फटकर प्रकाश देते हैं।

सोम को सर्वोत्तम औषधि बताया है। (ऋ० १०-९७-१८) सोम-रस के पान से बल प्राप्त होता है। (ऋ० १-९१-१८) इससे प्रसन्नता मिलती है और बुद्धि तथा वाणी की शक्ति बढ़ती है। (८-३२-१, ८-४९-४) उससे हिम्मत बढ़ती है और सुस्ती दूर होती है। (६-४७-२, ३) सोम की बूटी ऊँचे पहाड़ों पर उगती है। (३-४८-२) वह चांद की चांदनी में फैलती है। उसके पत्ते तोड़कर दो पत्थरों के बीच में रख दबाते हैं। रस निकलता है, उसको छानते हैं, उसको पीते हैं अथवा दूध दही, शहद व जौ मिलाकर पीते हैं। इस विषय पर अनेक मन्त्र आते हैं। ऋ० १-२८, ८-२, ९-६२ आदि कई मन्त्र हैं। ऋ० ५-८५-२ में भी इसका वर्णन है। (९-४६, १ से ४ में भी है।) सोम-पान से आयु बढ़ती है। (९-९७-१४) इसके कई लाभ वर्णन किये हैं। खोज करने वालों ने बताया है कि यह बूटी नैपाल में झील के किनारे उगती है।

सोम बहुत मन्त्रों में प्रभु का वाचक है। ऋ० १-९१ में १८, १९, २० में प्रार्थना की गई है कि हमारी हवि को ग्रहण करो, हमारी आयु लम्बी करो। १-९१-८ में सोम से प्रार्थना है कि हमें रोगों व दुःखों से बचाओ।

इन्द्र के सम्बन्ध में आने वाले अनेक मन्त्रों में उसको सोम का प्यारा बताया गया है। ६-४४ ऐसे ही ९-११३-४, ६, १०-५९-४, ९-१०८-१३ में भी सोम के अर्थ ईश्वर के हैं।

ऋ० ८-७९-२ में आता है कि सोम नग्न को वस्त्र देता है। अंधे को चक्षु और बहरों को कान। ऋ० १०-५९-४ में भी सोम प्रभु का वाचक है। ऋग्वेद में नवें मण्डल के सब मन्त्र पवमान सोम पर हैं, जिनमें ईश्वर की पवित्र करने की शक्तियों का वर्णन है। शेष वर्णन गौण है।

ऋ० १०-८५-२ में सोम पृथिवी, आदित्य और नक्षत्रों का बल देने वाला कहा है और १०-८५-५ में सोम चन्द्रमा का वाचक है।

एक बड़ा सुन्दर मन्त्र १०-८५-३ है कि सोम-रस के पीने वाले तो बहुत हैं, परन्तु असली सोम को जानने वाले बहुत कम पुरुष हैं। जो सारे संसार का स्वामी है। परमात्मा के रूप में सोम सांसारिक नियमों को बनाता है, दुष्टों को दण्ड देता है, सोम सर्वव्यापक है। ९-४१-२। सोम दिव्य शक्ति भी है। जो ऋ० ६-६९-५ में वर्णित की गई है। इस शक्ति ने उत्पत्ति-काल में पृथिवी और अन्तरिक्ष को फैलाया।

सोम ने ही पृथिवी, जो पहले बिना वृक्ष के थी, उस पर वनस्पति, औषधि और वृक्षों को रचा। सोम के कारण ही सूर्य प्रकाश देता है। इसका वर्णन ९-९१-३१ में है। यजुर्वेद ३४-२१ में भी सोम का वर्णन आता है।

सोम कुछ मन्त्रों में सूर्य का वाचक है। १-४९-१ सूर्य के रूप में वह वर्षा करता है। सोम के परमाणु तीनों लोकों में मिलते हैं।

इसी प्रकार ऋ० ९-६३-४ में वह सूर्य के अर्थ देता है। ९-९१-२८ में वह चन्द्रमा के अर्थ देता हैं और ९-९१-२९ में वह राजा का अर्थ देता है और ८-६८-८ में भी 'हे राजन्! तू हमारे शत्रु को मार भगा।'

अत: अथर्व० २-३६-३ में सोम पति के अर्थ देता है और १०-८५-३९, ४० में सोम को कन्या का पति कहा है।

इससे यह ज्ञात है कि वेद मन्त्रों में सोम के भिन्न भिन्न अर्थ हैं। यह वेद की शैली है; क्योंकि वेद में शब्द यौगिक अर्थ वाले होते हैं। सोम शान्तिदायक है, बलदायक है, शक्तिशाली है। जो उसकी पूजा करता है, उसको प्रभु सारे पदार्थ धन, पशु, वैभव और उन्नति देता है। भाग्यशाली स्त्री और चतुर पुत्र देता है। यदि वेदपाठी विद्वान् इसका ध्यान न करेगा कि सोम के इस मन्त्र में क्या अर्थ हैं, वह भूल में पड़ जायेगा और ठीक अर्थ न जानेगा।

वेद में वरुण का स्वरूप

वरुण शब्द वृञ् और वर् धातुओं से उन् प्रत्यय लगाने से बनता है। अर्थात् जिसको विद्वत् जन मुक्ति की इच्छा से वरते हैं और ग्रहण करते हैं, वह परमेश्वर वरुण है। अथवा जो 'वरः' श्रेष्ठ है। क्योंकि परमेश्वर सबसे श्रेष्ठ है, उसको वरुण कहते हैं। इसलिए वेद-मन्त्रों में जगह-जगह वरुण शब्द ईश्वर का वाचक है। शतपथ ब्राह्मण में (१४-३-२-४) में 'वरुणो वै, सर्वेषां देवानामात्मा, अर्थात् सब पदार्थों का आत्मा अन्तर्यामी परमेश्वर है। अथर्ववेद के १३-४-४ में 'स वरुणः, स रुद्रः, स महादेवः' ऐसा पाठ आता है। इसी प्रकार अथर्व० ४-१६-१ से ५ में बार-बार यह शब्द आता है। 'सर्वं' तद्राजा वरुण विचष्टे (५)—राजा तद् वेद वरुणस्तृतीयः (२)—वरुणस्य राज्ञे—वरुणस्य कुक्षी—आदि पाठ आते हैं, जहाँ पर वरुण परमेश्वर का द्योतक है। जो सारे विश्व का राजा है। जो सर्वज्ञ है, सबका अधिष्ठाता और विधाता है। सूक्त ७-८६, ८-४१, ४२, १०-१३-२ में भी वरुण का वर्णन है।

ऋग्वेद (५-८५-२) में भी बार-बार वरुण शब्द आता है, जहाँ पर वह परमेश्वर का ही वाचक है। ऋग्वेद (१-२४ में) 'अबुध्ने राजा वरुणो (७) उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय—(८), अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति (१०)—अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंसमान आयुः प्रमोषीः (११)। मन्त्र १३ में पाठ इस प्रकार है—'अवैनं राजा वरुणः—विमुयोक्तु पाशान्। इसी प्रकार ऋ०—१-२५ में भी कई मन्त्र हैं, जिनमें वरुण परमात्मा के अर्थों में आता है। यथा 'प्र देव वरुण व्रतम्' और (१६ में) इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय। ऋ० १-२४-१५ में वरुण के तीन पाश (जाल) उत्तम, मध्यम और अधम बताये हैं और प्रार्थना की है कि हम इनसे बचें—हे वरुण आप इनको ढीला करो।

ऋ० १-२५-७ में कहा है कि वरुण, पृथिवी, आकाश तथा द्युलोक सबका राजा है। वह सर्वज्ञ है, वह समुद्रों का भी स्वामी है। जो पक्षी आकाश में उड़ते हैं, वह सबको जानता है। वह सब मार्गों को जानता है। उसके नियम संसार को चलाते हैं। वह भूत, वर्तमान और भविष्य सब कालों को जानता है। वरुण से प्रार्थना की गई है कि जो पुरुष सदा आपके नियमों का उल्लंघन करते हैं, उसे आप दण्ड देते हैं। आप हमें मृत्यु से बचायें।

वरुण की कृपा से मनुष्य को यश मिलता है (१-२५-१५)—हे वरुण ! हमारी पुकार को सुनो। कृपा करो और सहायता करो।

क्योंकि वरुण की उपमा एक राजा से की जाती है इसलिए उसका रूप, अलंकार से वर्णन है कि उसके वस्त्र सोने की भाँति चमकते हैं। (१-२५-१३) उसके दूत सारे संसार में स्थान-स्थान पर काम करते हैं (ऋ० ७-८७-३) वरुण महाबली है, उसका कोई शत्रु नहीं, न उसको किसी शत्रु का भय है। (१-२५-१४) वरुण न्याय करता है।(ऋ० ३-४६-२) वह सत्य और असत्य को जानता है।(७-४९-३) वरुण का अस्त्र दुष्टों को दण्ड देता है, उसके नियम सदा अटल रहते हैं। (ऋ० ८-२५-८) उसके दूत चारों ओर सुन्दर वस्त्रों में बैठे हैं।(अथर्व० ११-३-६६) और (ऋ० ७-४३-३) वह हमारे पापों को जानता है। (ऋ० १-२४-७) उसको हिरण्यप्रकाश कहा है।

इसके अतिरिक्त वरुण शब्द 'दिव्य शक्ति' का भी प्रतीक है, जो संसार में कई काम करती है। देव विज्ञान हमें बताता है कि वह शक्ति उत्पत्ति-काल से ही अपना कार्य कर रही है। वरुण ने सूर्य को ऊँचा किया, उसका मार्ग स्थिर किया, पृथिवी को फैलाया (ऋ० १०-६३-९) और (ऋ० ७-८६-१) वरुण को अन्तरिक्ष का देवता कहा है। वह अन्तरिक्ष की नदियों का अधिष्ठाता है।

वरुण कई मन्त्रों में राजा का वाचक है जैसे ऋ० १०-१३२-४ में आता है। उसे प्रजा का राजा तथा उसका पालक कहा है। वह शत्रु का नाश करता है।

वरुण का जाप अविवाहित कन्याओं को व्रतधारिणी रखता है कि वह अपने धर्म का पालन करती रहें। इसीलिए ऋग्० १०-८५ में और अथर्ववेद काण्ड १४ में विवाह के समय वरुण से प्रार्थना है कि वह कन्या को उस व्रत से मुक्त कर दे।

वेद में मरुत् का स्वरूप

वेदों में कई मन्त्रों में मरुत् का वर्णन आता है, जो बहुत अद्भुत है। इस शब्द के कई अर्थ हैं। कई मन्त्रों में यह परमात्मा का वाचक है। किसी मन्त्र में यह एक दैविक शक्ति का वाचक है और किसी स्थान पर यह योद्धा के अर्थ वाला है। स्वामी दयानन्द जी ने मरुत् के अर्थ मनुष्य भी किये हैं। इस कारण वेद के पाठकों को इसका यथार्थ ज्ञान आवश्यक है। नहीं तो वह भूल में पड़ जायेगा। कारण यह है कि वेद में शब्दों के अर्थ धातु के अनुसार होते हैं। अब हम कुछ मन्त्रों का उदाहरण देकर इस पर प्रकाश डालने का यत्न करेंगे, जिससे यह बात स्पष्ट हो जायेगी।

मरुत् के अर्थ हैं वायु अथवा मनुष्य। यह मृ धातु और उत् प्रत्यय से बना है। मरने वाला, मारने वाला और वेग वाला—ये गुणों में होते हैं। कई मन्त्रों में ईश्वरवाचक है और कहीं-कहीं चुम्बक का।

यास्काचार्य अपनी पुस्तक निरुक्त (११-१३) में लिखता है कि जब मरुत् चलते हैं तो वे शब्द करते हैं। वे शीघ्रगामी हैं। मरुत् लोहे की चीजों को अपनी ओर खींचते हैं। (ऋ०—१-८८-५)

मरुत् के अर्थ तूफान के भी हैं। वह बादलों को घेर-घार कर लाते हैं। बादलों में चमक करते हैं। वर्षा उनके कारण होती है। वर्षा कराने में वह इन्द्र के सहायक हैं जैसे निम्नलिखित मन्त्रों में है। (ऋ०—१-१६४-४७) सूर्य की तपस से जलों की भाप बनती है,

वायु और सूर्य की किरणें भाप को ऊपर ले जाती हैं। मरुत् उनको मेघ बनाते हैं। मरुत् मेघों से गरज और चमक उत्पन्न करते हैं और वर्षा करते हैं। (ऋ०—१-८७ २)

कई मन्त्रों में उसकी उपमा योद्धाओं से की है। वह अस्त्रों से सुसज्जित होकर चलते हैं। (ऋ०—१-८५-८) उससे पृथिवी कांपती है। उसकी गति बहुत शीघ्र है। वे शब्द करते हैं। आलंकारिक रूप से उनके रथ सुनहरी कहे हैं। मरुत् के अर्थ कई मन्त्रों में योद्धा के किये जाते हैं, जैसे सेना के तुल्य चलने का वर्णन (ऋ०—५-५७-६, ५-५२ में) भली प्रकार आता है।

जब इन्द्र ने वृत्र को मारा जो वर्षा को रोके हुए था, उस समय मरुत् उसके सहायक थे। वास्तव में यह मेघों में बिजली का असर और तूफान है जो वर्षा करते हैं। मरुतों से पृथिवी के भूकम्प भी आते हैं। ऋ०—१-३७-८, १-८५-१ व २-३३-१ में आया है कि—

मरुतों को रुद्र व अग्नि का पुत्र बताया है और पृथिवी को माता कहा है। जिसका भाव है कि मरुत् एक दैविक शक्ति है जो अग्नि के परमाणुओं से बनी है और जो सृष्टि के आरम्भ से कार्य कर रही है। उसको मकनातीसी शक्ति भी कहते हैं। उसका केन्द्र ध्रुव है जो मकनातीस का केन्द्र है जहां से उसकी लहरें चलती हैं। यह लहरें बड़े वेग से चलती हैं। ध्वनि करती हैं। वह पृथिवी से द्यु लोक तक चलती हैं। उनका अस्तित्व बहुत लाभदायक है। यह संसार में अपना कार्य करती रहती हैं। इस शक्ति का वर्णन पं० भगवद्दत्त जी ने अपनी पुस्तक "Creation of the universe" में विस्तारपूर्वक किया है। उनको अन्तरिक्ष के पुरुष भी कहा है। (ऋ०—१-११०-६)। उनकी लहरें वायु-मण्डल में चक्कर काटती रहती हैं। मरुतों की अपनी किरणें हैं। ये सात प्रकार की हैं। हर एक प्रकार की सात-सात शाखाएँ हैं। (ऋ०—६-४७-८) इनकी किरणें सीधी नहीं चलतीं। (ऋ०—४-१४-४) सृष्टि के उत्पत्ति-काल में मरुतों ने पृथिवी को फैलाने का काम किया (ऋ०—१०-६०-६)। मनुष्य मकनातीस शक्ति से कई काम ले सकता है। वह बड़ी लाभदायक भी है।

गीता (१०-२१) में कहा है कि मैं मरुतों में मरीची के तुल्य हूँ। इसका तात्पर्य है कि मरुतों में सबसे उत्तम मरीची मरुत् है। मरुत् जल और वायु के परमाणुओं से मिलकर कई काम करते हैं।

(ऋ०—१-३१-१)

मरुतों के रथ सुनहरी हैं (ऋ०—१-६४-११)। जब बादलों में बिजली चमकती है, एक प्रकाश की लकीर सी बनती है। वायु को मरुतों का रथी कहा गया है। (ऋ०—५-५८-७)। मरुतों का लाभ यजु० ३३-४५ में और ऋ०—५-५३-१० में बताया है। मरुत् प्रकाश करते हैं (ऋ०—१-१९-८)। यह पावक अग्नि के गुण रखते हैं।

ये सूर्य के प्रकाश में भी सहायक हैं। (ऋ०—१-८७-६) उनकी विचित्र लीला है। (ऋ०—१-१६८-२) वह सब दूर-दूर तक जाते हैं। (५-५७-३)। नारा नाम के मरुत् सूर्य तक जाते हैं। इनका प्रकाश स्वतः ही है। इनके कारण मकनातीसी सुई उत्तर की ओर रहती है। उनके गुणों को जानकर मनुष्य बहुत लाभ उठा सकता है। वेद के पाठकों को मरुत् के अर्थों का ध्यान रखना चाहिए।

नारी और वेद

वेद में नारी के प्रति दृष्टिकोण पुरुष से समानता का है। वेद पत्नी को अर्द्धांगिनी कहता है। कई मन्त्रों में उसको सम्राज्ञी बताया है। कहीं पर उसको घर की ध्वजा कहा है और किसी स्थान पर उसे घर की शिला कहा है। और अथर्व०—२-३६-५ में एक खिली हुई कली कहा है।

धार्मिक क्षेत्र में स्त्री के अधिकार पुरुष के तुल्य हैं। कन्या ब्रह्मचारिणी रहती हैं, यज्ञोपवीत पहनती हैं, वेद का स्वाध्याय करती हैं और उन्नति करते-करते ऋषि-पद प्राप्त कर सकती हैं। कई स्त्रियाँ

जैसे कि लोपामुद्रा, विश्ववारा, शशीघोषा, अपाला आदि वेद-मन्त्रों की द्रष्टा हुई हैं। यह वैदिक सभ्यता का ही प्रभाव था कि भारत में स्त्रियाँ बहुत विदुषी थीं। गार्गी-जैसी अनेक नारियाँ प्रसिद्ध हैं।

वेद में नारियों के प्रति इतना ऊँचा आदर्श था कि स्त्रियाँ यज्ञ आदि कार्यों में भाग लेती थीं और उनको यज्ञ करने का अधिकार था। अग्निहोत्र प्रातः-सायं पति-पत्नी सदा घरों में करते थे।

(ऋ०—८-३१-५, ६। २१-५३-३)

वेद कहता है—

शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि।

(अथर्व०—६-१२२-५)

अर्थात्—इन शुद्ध, पवित्र यज्ञ की अधिकारिणी स्त्रियों को…। फिर ऋ०—१०-१०९-४ में आता है कि—

भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन्।

अर्थात्—यह वेदज्ञ की कन्या यज्ञोपवीत धारण करके बलवती बन जाती है और दुष्ट स्वभाव वालों को उत्कृष्ट बना देती है।

कन्या के ब्रह्मचर्य धारण करने का (अथर्व० ११-५-१८ में) स्पष्ट वर्णन है। वहाँ आता है कि—

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।

अर्थात्—ब्रह्मचर्य से कन्या युवा पति को प्राप्त करती है।

इसी प्रकार ऋग्वेद के विवाह-सूत्र (१०-८५-९ में) आता है—

सूर्यां यत् पत्यं शंसन्तीं मनसा सविता ददात्।

अर्थात्—सविता पिता ने सूर्या कन्या को उस पति को दिया जिसको वह मन से चाहती थी। इसका भाव यह है कि कन्या का विवाह भी उसकी इच्छा के अनुसार होता था।

वैदिक मर्यादा के अनुसार पति घर का स्वामी और पत्नी सम्राज्ञी प्रबन्धकर्त्री होती है। वेद कहता है कि—

एवा त्वं सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य॥

(अथर्व०—१४-१-४३)

अर्थात्—तू पति के घर जाकर रानी बन। फिर एक और मन्त्र में यह है—

सुवाना पुत्रान् महिषी भवाति गत्वा पतिं सुभगा वि राजतु ॥
(अथर्व०—२-३६-३)

अर्थात्—यह देवी पुत्रों को उत्पन्न करती हुई महारानी हो और पति को भाग्यवान् करे।

इससे यह प्रतीत होता है कि समाज में स्त्रियों का मान और आदर का भाव था। स्त्री-जाति के सम्बन्ध में ऐसे उत्तम भाव और किसी मत में नहीं पाये जाते।

मनु महाराज भी लिखते हैं—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः ॥

अर्थात्—जहाँ पर नारी का सत्कार होता है वहाँ पर देवता प्रसन्न होते हैं और जहाँ ऐसा नहीं होता वहाँ पर सारे काम असफल होते हैं।

सांसारिक जीवन में भी स्त्रियों के अधिकारों का वेद में बहुत विस्तार से वर्णन पाया जाता है। राजा के चुनाव में स्त्रियाँ मतदान करती हैं (यजु० ६-२)। वह सेना में भी सेनापति बनती हैं और युद्ध करती हैं (यजु० १६-२४, तथा १७-४४)। वह यज्ञों में निमन्त्रित की जाती हैं और उनको आदर का स्थान दिया जाता है (अथर्व० ६-१२२-४ तथा ७-४७-१, २)। स्त्रियाँ सोम-रस का पान भी करती हैं (यजु० ६-३४)। विदुषी स्त्रियाँ राज्य-कार्यों में भी भाग लेती हैं। वे न्यायाधीश बनती हैं। वे सभाओं में जाती हैं (१०-८६-१०)। वे सत्संगों में जाती हैं (अथर्व० ६-९३)। वे मेलों में जाती हैं (ऋ० १०-८६-१०)। वे सुन्दर वस्त्र पहनती हैं। वे भूषण, रत्न आदि से सुसज्जित होती हैं। अञ्जन लगाती हैं (यजु० १२-५७ व अथर्व० १२-२-३१)। वे लाभदायक बूटियों के रसों का पान करती हैं, जिनसे गर्भ बना रहे (अथर्व० १४-२-७०)।

जहाँ इस प्रकार नारियों के अधिकारों का वर्णन आता है, वहाँ पर वेद में नारी-धर्म का भी विस्तार से व्यौरा मिलता है। ऋ० १-७३-३ पत्नी को पतिव्रत-धर्म का पालन आवश्यक है।

में—'अनवद्या पतिजुष्टेव नारी' अर्थात् एक चरित्रवान् पत्नी पति को प्यारी लगती है और समाज में भी उसका आदर होता है।

वेद की स्त्री को आज्ञा है (ऋ० १०-८५-४२)—

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिः मोदमानौ स्वे गृहे॥

अर्थात्—तुम दोनों यहाँ रहो। जुदा न हो, सारी आयु-भर इकट्ठे रहो। अपने पुत्रों-पौत्रों में खेलते, हँसते अपने घर में रहो। यही भाव ऋ० ८-३१-८ में भी है—

पुत्रिणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्व्यश्नुतः। उभा हिरण्यपेशसा॥

अर्थात्—अपने पुत्र और कन्याओं में रहते हुए तुम दोनों अपनी आयु-भर प्रसन्न रहो और सोने के भूषण पहनो।

पत्नी को आज्ञा है कि—

जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्।

अर्थात्—पत्नी को चाहिए कि पति को मधुर और शान्तिदायक बात कहे। पत्नी पति से एक मन वाली रहे और उसकी आज्ञा को माने।

पत्युरनुव्रता भूत्वा॥ (१४-१-४२)

पति-पत्नी के प्रेम को वर्णन करता हुआ वेद कहता है कि—

इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दम्पती।

(अथर्व० १४ २-६४)

अर्थात्—हे इन्द्र! इस जोड़े का आपस में ऐसा प्रेम हो जैसा कि चकवा-चकवी का। वेद दम्पती की तुलना इन शब्दों में करता है—

अमोऽहमस्मि सा त्वं सामाहमस्म्यृक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम्।

(अथर्व० १४-२-७१)

अर्थात्—मैं साम हूं, तू ऋक् है। मैं द्यु-लोक हूं, तू पृथिवी है। हम दोनों मिलकर एक तत्त्व होते हैं।

इसके अतिरिक्त भार्या को घर के काम-काज में कुशलता रखनी चाहिए। वेद ने कहा है कि घर का भार दोनों मिलकर उठा सकते हैं

सुवाना पुत्रान् महिषी भवाति गत्वा पतिं सुभगा वि राजतु ।।
(अथर्व०—२-३६-३)

अर्थात्—यह देवी पुत्रों को उत्पन्न करती हुई महारानी हो और पति को भाग्यवान् करे।

इससे यह प्रतीत होता है कि समाज में स्त्रियों का मान और आदर का भाव था। स्त्री-जाति के सम्बन्ध में ऐसे उत्तम भाव और किसी मत में नहीं पाये जाते।

मनु महाराज भी लिखते हैं—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्ताऽफलाः क्रियाः।।

अर्थात्—जहाँ पर नारी का सत्कार होता है वहाँ पर देवता प्रसन्न होते हैं और जहाँ ऐसा नहीं होता वहाँ पर सारे काम असफल होते हैं।

सांसारिक जीवन में भी स्त्रियों के अधिकारों का वेद में बहुत विस्तार से वर्णन पाया जाता है। राजा के चुनाव में स्त्रियाँ मतदान करती हैं (यजु० ९-२)। वह सेना में भी सेनापति बनती हैं और युद्ध करती हैं (यजु० १६-२४, तथा १७-४४)। वह यज्ञों में निमन्त्रित की जाती हैं और उनको आदर का स्थान दिया जाता है (अथर्व० ६-१२२-४ तथा ७-४७-१, २)। स्त्रियाँ सोम-रस का पान भी करती हैं (यजु० ६-३४)। विदुषी स्त्रियाँ राज्य-कार्यों में भी भाग लेती हैं। वे न्यायाधीश बनती हैं। वे सभाओं में जाती हैं (१०-८६-१०)। वे सत्संगों में जाती हैं (अथर्व० ६-९३)। वे मेलों में जाती हैं (ऋ० १०-८६-१०)। वे सुन्दर वस्त्र पहनती हैं। वे भूषण, रत्न आदि से सुसज्जित होती हैं। अञ्जन लगाती हैं (यजु० १२-५७ व अथर्व० १२-२-३१)। वे लाभदायक बूटियों के रसों का पान करती हैं, जिनसे गर्भ बना रहे (अथर्व० १४-२-७०)।

जहाँ इस प्रकार नारियों के अधिकारों का वर्णन आता है, वहाँ पर वेद में नारी-धर्म का भी विस्तार से व्यौरा मिलता है।

पत्नी को पतिव्रत-धर्म का पालन आवश्यक है। ऋ० १-७३-३

में—'अनवद्या पतिजुष्टेव नारी' अर्थात् एक चरित्रवान् पत्नी पति को प्यारी लगती है और समाज में भी उसका आदर होता है।

वेद की स्त्री को आज्ञा है (ऋ० १०-८५-४२)—

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिः मोदमानौ स्वे गृहे॥

अर्थात्—तुम दोनों यहाँ रहो। जुदा न हो, सारी आयु-भर इकट्ठे रहो। अपने पुत्रों-पौत्रों में खेलते, हँसते अपने घर में रहो। यही भाव ऋ० ८-३१-८ में भी है—

पुत्रिणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्व्यश्नुतः। उभा हिरण्यपेशसा॥

अर्थात्—अपने पुत्र और कन्याओं से रहते हुए तुम दोनों अपनी आयु-भर प्रसन्न रहो और सोने के भूषण पहनो।

पत्नी को आज्ञा है कि—

जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्।

अर्थात्—पत्नी को चाहिए कि पति को मधुर और शान्तिदायक बात कहे। पत्नी पति से एक मन वाली रहे और उसकी आज्ञा को माने।

पत्युरनुव्रता भूत्वा॥ (१४-१-४२)

पति-पत्नी के प्रेम को वर्णन करता हुआ वेद कहता है कि—

इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दम्पती।

(अथर्व० १४ २-६४)

अर्थात्—हे इन्द्र! इस जोड़े का आपस में ऐसा प्रेम हो जैसा कि चकवा-चकवी का। वेद दम्पती की तुलना इन शब्दों में करता है—

अमोऽहमस्मि सा त्वं सामाहमस्म्यृक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम्।

(अथर्व० १४-२-७१)

अर्थात्—मैं साम हूं, तू ऋक् है। मैं द्यु-लोक हूं, तू पृथिवी है। हम दोनों मिलकर एक तत्त्व होते हैं।

इसके अतिरिक्त भार्या को घर के काम-काज में कुशलता रखनी चाहिए। वेद ने कहा है कि घर का भार दोनों मिलकर उठा सकते हैं

(ऋ० १-१७९-३)। घर को साफ-सुथरा रखना स्त्री का काम है (अथर्व० ९-३-२४)।

वधूमिव त्वा शाले यत्र कामं भरामसि ।।

अर्थात्—स्त्रियाँ भोजन बनाती हैं, जल लाती हैं (अथर्व० १०-३-१४)। बच्चों की पालना करती हैं और घर का सारा प्रवन्ध करती हैं।

स्त्रियों को वेद की आज्ञा है कि वह अपनी दृष्टि नीचे की ओर रखा करें। ऋ०—८-३३-१९ में आता है कि—

अधः पश्यस्व मोपरि सन्तरां पादकौ हर।
मा ते कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ ।।

अर्थात्—हे स्त्री! तू नीचे को देखा कर। ऊपर को दृष्टि न रख। अपने पाँवों को भली प्रकार रखा कर। कोई भी तेरे अंगों को न देख पावे, जो वस्त्रों के नीचे हैं। ऐसे तू ब्रह्मा हो जावेगी। इसी बात को आलंकारिक रूप से अगले मन्त्र में स्पष्ट किया है—

एषा प्रतीची दुहिता दिवो नृन्योषेव भद्रा नि रिणीते अप्सः ।।
(ऋ०—५-८०-६)

कि उषा एक चरित्रवान् स्त्री की न्याई मनुष्यों में अपने मुख को नीचा रखती है। शरमाती है।

वेद ने स्त्री को यह भी आज्ञा दी है कि वह अपने गर्भ को छुपाये रखे और पति का भी चाहिए कि गर्भ की रक्षा करे। (यजु० ८-२७)

पत्नी को आज्ञा है कि पति के दक्षिण की ओर बैठा करे।
(ऋ०—२-३६-६)

पत्नी पति से कहती है—

अभि त्वा मनुजातेन दधामि मम वाससा।
यथासो मम केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन ।।
(अथर्व०—७-३७-१)

अर्थात्—मैं अपने वस्त्र तेरे वस्त्र से बाँधती हूँ कि तू केवल मेरा ही रहे और किसी स्त्री की कीर्ति न किया करे।

वेद की इन सुन्दर आज्ञाओं पर चलकर आर्य जाति सुख और आनन्द का जीवन व्यतीत करती रही है। जब से इस जाति ने इनको भुलाया है तब से ही कष्ट पा रही है। गृहस्थ-जीवन का एक सुन्दर आदर्श वेद हमें बताता है।

वेदों में वृषभ शब्द का प्रयोग

वृषभ शब्द के अथ हैं बलवान्। इसी कारण वेदों में वृषभ कहीं बैल के लिए प्रयुक्त हुआ है और कहीं ईश्वर के लिए तथा कहीं इन्द्र के लिए। सूर्य, बृहस्पति, अग्नि, वरुण के लिए भी वृषभ का प्रयोग हुआ है।

जहाँ वृषभ बैल के लिए आया है, वहाँ यह हल खींचना, गाड़ी खींचना, बोझ लादना इत्यादि कार्यों के लिए है। बैल, जिसके सींग तेज नुकीले हैं, पृथिवी का आधार बैल पर है। इसका अर्थ यह नहीं कि बैल के सींगों पर पृथिवी टिकी है। अभिप्राय है कि बैल से खेती होती है और अन्न से सब जीवित हैं।

बैल को सांड करके छोड़ते हैं जो बहुत लाभदायक है। उसका वर्णन अ० ९-४-१ में आता है। इसकी रसम करते हैं।

(ऋ० ९-४-११)

वृषभ पति के लिए भी प्रयुक्त हुआ है और मरुतों के लिए भी (अ० ७-५६-१८)। ऋ० ७-१०१-१२ में पर्जन्य को वृषभ कहा है और ऋ० ८-२०-१९ तथा ८-७-२६ में वृषभ मेघों के लिए आया है।

वृषभ शब्द के वास्तविक अर्थ न समझकर पाश्चात्य टीकाकारों ने बहुत भ्रान्ति फैलाई है। जहाँ मन्त्रों में इन्द्र तथा सूर्य से वर्षा का वर्णन है वहाँ पर उन टीकाकारों ने 'इन्द्र बैल खाता है' ऐसा अर्थ किया है (ऋ० १०-२८)। वृषभ राजा के लिए भी आता है (ऋ०

१०-१८०-२)। एक अन्य स्थान पर उल्लेख है 'बैल से बैल उत्पन्न हुआ।' इसका अभिप्राय है कि बलवान् पिता का बलवान् पुत्र।

वृषभ एक औषधि का नाम भी है, जिसके सेवन से पुत्र उत्पन्न होता है (अ० ३-२३-४)। यज्ञ कराने वाले ब्रह्मा को भी वृषभ कहा है (अ० ३-२७-१५)। वृषभ सूर्य के लिए तो कई मन्त्रों में आया है। (ऋ० १०-१८७-३, १०-१८६-१, ७-५५-७, १०-३०-१६, १०-८-१)।

जैसा कि ऊपर लिखा है वृषभ ईश्वर का वाचक भी है (ऋ० ८-६१-१३)। सोम को भी वृषभ बताया है (ऋ० १-१६४-४३)। वरुण भी वृषभ है (ऋ० १०-११-१) अग्नि भी वृषभ है (ऋ० ८-४६-४१)। बृहस्पति भी वृषभ है (ऋ० १०-६२-१०)।

इन सब उदाहरणों से स्पष्ट है कि वृषभ बलवान को कहते हैं, केवल बैल को नहीं। वेद के पाठकों को यह बात भली-भाँति समझ लेनी चाहिए कि वेद में शब्दों के अर्थ धातु तथा साथ ही जैसा प्रकरण हो, वैसे होते हैं। वेद मंत्रों के अर्थों की शैली न समझकर अर्थ के अनर्थ किए गए हैं। पाश्चात्य टीकाकारों ने इसी नासमझी के कारण वेदों पर वृथा दोष लगाये हैं और अपने मिथ्या असत्य विचारों के कारण अर्थों को बदला है। यही कारण है जो उन्होंने आर्यों को गोमांसभक्षी लिखा है और यज्ञ में पशु को मारना बताया है। यह भूल वेद मन्त्रों के ठीक-ठीक न अर्थ करने से हुई है।

वेद में अश्विनौ का स्वरूप

अश्विनौ का शब्द बड़ा विचित्र है। इसके विषय में यास्काचार्य ने भी निरुक्त में लिखा है कि अश्विनौ एक अद्भुत शब्द है और इसके अर्थ भी आश्चर्यजनक हैं। (१२—१)

यह शब्द चारों वेदों में कई स्थान पर आया है और केवल ऋग्-वेद में ही यह इन सूक्तों में वर्णित है। म० १ में ३४, ४६, ४७, ११२,

११६, १२०, १५७, १५८, १८०—१८४, म० २ में ३९, म० ३ में ५८, म० ४ में ४३—४५ म० ५ में ७३—७७, म० ६ में, ६७—७४, म० ८ में ५, ८, १०, २२, २६, ३५, ६२, ७४, ७६, म० १० में ३९ ४१, १००, १४३।

इसके स्वरूप का वर्णन करते हुए ऋ०—२-३९ में बताया है कि यह जोड़ों का वाचक है। जैसे दो हाथ, दो पैर इत्यादि। भिन्न-भिन्न मन्त्रों में इसके अर्थ भिन्न-भिन्न होते हैं। जैसे सूर्य-पृथिवी, आकाश-पृथिवी, दिन-रात, पति-पत्नी, राजा-प्रजा इत्यादि।

अश्विनौ उन दो तारों का भी नाम है जो उषाकाल से पहले आकाश में दिखाई देते हैं और दिन-रात में तीन चक्र लगाते हैं। (ऋ०—१-३४-२, ७) यह शब्द दो दिव्य वैद्य (भिषज्) का भी द्योतक है जो रोगों का इलाज करते हैं। (ऋ०—८-१८-८)।

अश्विनौ का वर्णन वेद में आलंकारिक रूप से है। इनका रथ सुनहरी है जो आकाश में चलता है। उसके तीन चक्र हैं और तीन ही बैठने के स्थान हैं (१०—४१—१)। इसमें १००० रत्न जड़े हैं। इसके घोड़े श्वेत और लाल रंग के हैं। यह आकाश में दूर-दूर तक जाता है। (७-६९-२)।

इनको कई मन्त्रों में प्रातःकाल आवाहान किया गया है और उनकी कीर्ति का गायन है। इनके घोड़े शीघ्रगामी हैं और सबसे आगे रहते हैं और इसीलिए उषा उनके रथ में बैठ जाती है। यह प्रातःकाल का दृश्य है।

वेद में इनके कई कारनामे विस्तार से वर्णित हैं। भिषज् के रूप में च्यवन को फिर से युवक बनाया जो बलरहित हो गया था। (१०-३९-४) ये दिव्य वैद्य हैं जो रोगों का नाश करते हैं (१०-३९-५)।

इनके अर्थों की लीला देखिए कितनी विशाल है! यजु० ७-११ में यह सूर्य और पृथिवी के वाचक हैं। यजु० १०—३३, ३४ में यह नर-नारी के अर्थ देते हैं। यजु० १२—७४, अ०—२—३०—२ में यह पति-पत्नी का रूप हैं। ऋ० ८—८—१०, ११ में यह सूर्य और चन्द्र का जोड़ा है। यजु० १४—१ से ५ तक यह राजा-प्रजा के लिए

आये हैं। यजु० ३४—२९ में तथा कई अन्य जगह ये दिन-रात का अर्थ देते हैं।

ऋ० ८-२२-६ में यह हल के दो बैल हैं। यजु० ३८—; में यह प्राण-अपान के अर्थ देते हैं। यजु० ३४—२८ में यह गुरु-शिष्य के अर्थ देते हैं। ऐसे और बहुत से मन्त्र हैं, परन्तु हमने ये दिग्दर्शन मात्र थोड़े से यहाँ पर दिए हैं। इसी प्रकार यजु० ६—९ में भी सूर्य और चन्द्र के लिए आते हैं।

अश्विनौ की दिव्य शक्ति का वर्णन पं० भगवद्दत्तजी ने अपनी पुस्तक The Story of Creation में किया है। इनकी शक्ति से उत्पत्ति-काल में कई अर्थ हुए। ऋ०—७-६९-१ का हवाला देते हुए वे बताते हैं कि अश्विनौ ने पृथिवी और आकाश को फैलाने का कार्य किया। अश्विनौ को ईश्वर का वाचक भी कई मन्त्रों में पाते हैं। जैसे ऋ०—१०-३९-४ में। वेद मन्त्रों का ठीक अर्थ करने के लिए इनका जानना आवश्यक है।

वेद में रुद्र का स्वरूप

रुद्र शब्द के अर्थ हैं 'रुलाने वाला'। क्योंकि ईश्वर मनुष्य के कर्मों का फल देता है और दुष्ट कर्मों के फलस्वरूप मनुष्य को कष्ट, दुःख, विपदा, रोग, वियोग व मृत्यु भोगने पड़ते हैं, इसी कारण ईश्वर को रुद्र भी कहा जाता है।

वेदों में रुद्र शब्द कई स्थानों पर आता है। ऋग्० १-४३, १-१४ तथा २-३३, ७-४६ सूक्तों में रुद्र ईश्वरीय शक्ति का प्रतीक है। कई मन्त्रों में यह अग्नि का द्योतक है और इसको मरुतों का पिता भी कहा है। वहाँ यह तूफानों का बनाने वाला है। जैसे ऋग् १-११४-६ में। कई मन्त्रों में रुद्र को आवाहन किया जाता है और प्रार्थना करते हैं कि वह हमारी किसी प्रकार की हानि न करे और न होने दे।

ऋग्० १-११४-७, ८ में रुद्र को औषधियों का स्वामी बताया है और रोग की निवृत्ति की प्रार्थना की गई है। इस रूप में रुद्र रोगों का नाशक है। ऋ० १-४३-४ और ७-४६-३ में रुद्र औषधियों का स्वामी है। प्रार्थना है कि हे रुद्र, तू अपना अस्त्र हमसे दूर कर दे और हमारी हानि न कर।

रुद्र शब्द रुदिर धातु से बनता है। वहाँ पर उसके अर्थ 'लाल' हैं। रुद्र प्रभु से प्रार्थना है कि वह अपना जो कल्याणकारी रूप है, उससे हमारी सन्तान की रक्षा करे। हमारी सन्तान जीवित रहे। ऋ० ७-४६-२ में ऐसा वर्णन है। श्वेताश्वतर उपनिषद् (३-५, ६) में भी यह आता है।

ऋग्वेद के अतिरिक्त यजुर्वेद में इसका वर्णन बहुत विस्तार से है। यजुर्वेद के १६वें अध्याय के १०० मन्त्र हैं जो रुद्र को नमस्कार करने पर हैं। इनको शतावरी भी कहते हैं। कई ब्राह्मण इन मन्त्रों का नित्य पाठ करते हैं।

इन मन्त्रों के आधार पर शैव मत चला था। रुद्र का जो पुराना स्वरूप था, वह समय व्यतीत होने पर शिव के रूप में बदल गया। शैव मतावलम्बी अथर्ववेद के इन मन्त्रों को अपनी पुस्तकों में बार-बार लिखते रहे हैं (६-२-२०, ६-४-१, ६-७-४४, ५७-५६ और ६-६० से ६३ तक)। सामवेद में भी रुद्र सूक्त हैं।

प्राण और उपप्राणों को भी रुद्र कहा है; क्योंकि जब ये मनुष्य को छोड़ते हैं तो सब सम्बन्धी रोने लग जाते हैं।

यज० (१६-५१) में रुद्र चर्म के वस्त्र पहनता है और हाथ में तीर कमान रखता है। यह उसका आलंकारिक वर्णन है।

ऋ० (२-३३-४) में रुद्र एक सेनापति का वाचक है। तभी तो आर्य लोग युद्ध के समय उसका आवाहन करते थे और हर-हर महादेव कहा करते थे। यजु० (१६-१५) में रुद्र को मृत्यु का देवता कहा है। यजु० (३-६०) में आता है कि युवती कन्याएँ रुद्र की पूजा करती हैं जिससे उनको योग्य पति मिले। रुद्र के लिए शिव और शंकर के शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है। यजु० (१६-४१) में रुद्र को अग्नि भी कहते हैं। वह एक दैविक शक्ति के रूप में अग्नि के

अणु से बनता है और यह मरुतों के साथ मिलकर बादलों में चमक देता है।

औषधियों के स्वामी के रूप में वह सहस्र बूटियों वाला है और रोगों का नाश करता है।

उस ब्रह्मचारी को भी रुद्र कहते हैं जो ३६ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करे।

रुद्र परमात्मा का वाचक कई मन्त्रों में है। ऐसे ही अग्नि, इन्द्र, वरुण आदि हैं, जो परमात्मा के वाचक हैं। इससे य: नहीं समझना चाहिये कि परमात्मा कई हैं। ये सब एक ही परमात्मा के नाम उसके भिन्न-भिन्न गुणों के कारण आते हैं। वास्तव में एक ही प्रभु है जिसकी अनेक शक्तियाँ संसार में कार्य कर रही हैं। उनका वर्णन वेदों में आता है। यह कोई पृथक् देवता नहीं और न वेद कई देवताओं की पूजा करने को कहता है। एक हो देव है जिसकी स्तुति भिन्न-भिन्न रूपों में की गई है।

वेद मन्त्रों में एक ही शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। पाठक को यह देखना है कि उस मन्त्र में उस शब्द के क्या अर्थ लगते हैं? इसीलिये वेद को ठीक प्रकार से पढ़ने को शैली बताई है कि पाठक वेद मंत्रों के ठीक-ठीक अर्थ कर सकें। पाश्चात्य विद्वानों ने इस शैली को न जानकर अर्थ का अनर्थ किया है।

– वेदों में यम के अर्थ

वैदिक देव विज्ञान में यम शब्द के बहुत व्यापक अर्थ हैं। यास्काचार्य ने निरुक्त (१२-१९ में) यम के अर्थ आदित्य किये हैं। यही श० ब्रा० (१४-१-३-४ में) कहता है। श० ब्र० (१४-२-२-११) यम के अर्थ वायु भी करता है। एक अन्य स्थान पर निरुक्त (१०-२०)

में यम के अर्थ अग्नि किये हैं और गो० ब्रा० (४-८) में भी ऐसा ही है।

विवस्वान् को श० ब्रा० (१०-५-२-४) में सूर्य बताया है और यम को सूर्य का पुत्र कहा है। वहाँ उसके अर्थ वायु के हैं। सूर्य की तपन से वायु चलता है। सूर्यसिद्धान्त में (१२-१८) यम को काल बताया है। उस स्थान पर यम मृत्यु का देवता कहा जाता है। वहाँ वह परमात्मा का वाचक है। परमात्मा की आज्ञा के बिना मृत्यु नहीं आती।

यम के अर्थ मनुस्मृति (६-१२) में धर्म किये हैं (यमाः स्मृताः)। यम राजा के कर्मचारी को भी कहते हैं। जब वह कर वसूल करता है। कहते हैं 'यम आज्ञा है'। यम राजा को भी कहते हैं। क्योंकि वह प्रजा को दण्ड देता है।

यम-यमी (ऋ० १०-१० में) पति-पत्नी—भाई-भगिनी अथवा दिन-रात के अर्थों में भी विद्वानों ने प्रयोग किया है। पाश्चात्य विद्वान् वहाँ पर couple का अर्थ करते हैं।

दाह-संस्कार के मन्त्रों (ऋ० १०-१४, १५, १६) में बार-बार यम शब्द का प्रयोग हुआ है।

जुड़वाँ बालकों को भी यम कहते हैं। यम का सम्बन्ध प्राण-अपान से भी है। क्योंकि जब प्राण-अपान बन्द हो जाते हैं तो मृत्यु हो जाती है।

चाँद की दूसरी तिथि को भी यम कहते हैं। इस तिथि का गहरा सम्बन्ध यम से है।

जब बीमार के लिये किसी वैद्य को बुलाना हो तो दो मनुष्य नहीं जाते—भ्रम करते हैं। मृत्यु की आशंका करते हैं। मृत्यु होने पर कहते हैं इसका काल आ गया।

अथर्ववेद १८-२-११, १२ और ऋ० १०-१४-१० में यम के दो कुत्ते बताये गये हैं। **'श्यामश्च त्वा मा शबलश्च प्रेषितौ यमस्य यौ पथिरक्षी श्वानौ'** अ० ८-१-९ में आता है। यह वर्णन आलंकारिक है। वास्तव में दिन-रात ही दो कुत्ते हैं जो सब मनुष्यों के कर्मों को देखते हैं। दिन-रात ही मनुष्य की आयु को समाप्त कर देते हैं। ऋ० २८-

२-२७ में यम के दो दूत कहे हैं। **'मृत्युर्यमस्यासीद् दूतः'**। यजु० ३७-११ में आता है—**'एष वै यमः य एष सूर्यः तपत्येष'** यहाँ पर यम कर्म का वाचक है। ऋ० १०-१३७-५ में आता है—"विनियन्तुरादित्य यस्य" वहाँ भी सूर्य का वाचक है। यम को मृत्युलोक का राजा कहा है—वह परमात्मा का ही द्योतक है। पृथ्वी को यमी कहा है—सब को खा जाती है। वायु को यम कहते हैं क्योंकि वह मृत्यु होने पर जीव को वायुमण्डल में ऊपर ले जाता है।

य० ३८-३९ में 'अयं वै यमो' ऐसा वचन आता है। यम स्वप्न को भी कहते हैं। वह स्वप्न लाता है।

य० २५-४, ५ में 'यमस्य त्रयोदशी' और 'यम्यै त्रयोदशी' शब्द आते हैं। यम का सम्बन्ध चाँद की १३वीं से कहा है।

य० १२-६३ में अग्निर्वै यमः आता है। अग्नि-दाह करने में कारण रूप है। इसलिए यम है।

यम-यमी को भाई बहिन की कल्पना करके एक नियम बताया है कि इनका विवाह नहीं होता (ऋ० १०-१०-१३)।

ऋ० ८-२४-११ में यम विद्युत् है। वास्तव में यम परमात्मा ही है जो मनुष्यों को कर्मों का फल देता है। वेद के अर्थ करने की शैली को जानकर मन्त्रों के अर्थ ठीक नहीं हो पाते। अर्थ प्रकरण अनुसार बुद्धिमानों को अर्थ करने चाहिएँ।

प्राण

वैदिक साहित्य में प्राण का वर्णन बहुत अद्भुत और विस्तारपूर्वक है। सब का जीवन मूल होने के कारण से प्राण ईश्वर का वाचक है। अथर्व० ११-४-१० में प्राणो ह सर्वस्येश्वरो—प्राण सबका ईश्वर है। प्राणो ब्रह्म छा० ४-१०-२५ में आता है। अथर्ववेद में प्राण सूक्त

हैं, जिसमें प्राण के सम्बन्ध में २६ मन्त्र हैं। उसमें 'प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे' इत्यादि कई मन्त्रों में प्राण के अर्थ ईश्वर के हैं।

प्राण जीवन-शक्ति (Cosmic energy) है, जो सृष्टि के रचने में काम करती है। ईश्वर ने सृष्टि-रचना की इच्छा की, तप तपा, उसी समय से इस 'जीवन-शक्ति' का कार्य आरम्भ हो गया। यह जीव जन्तु सब में जीवन का आधार मूल है। इसके सहारे शरीर के अंग वा इन्द्रियाँ हरकत करती हैं। प्राण जीवन का आधार है।

श्वास कार्य में भी प्राण वायु शरीर में आता है और रक्त को शुद्ध करता है। यह शरीर में ५ नामों से अपने-अपने कार्य करता है। वहाँ यह प्राण, अपान, व्यान, समान वा उदान के नामों से कई कार्य करता है। इस शरीर के संचालन से प्राण का गहरा सम्बन्ध है। यदि प्राण सारे शरीर में पूर्ण रूप से न पहुँचे तो शरीर अस्वस्थ हो जाता है। यदि अपान बाहिर न निकले तो भी कई रोग हो जावें।

इसके अतिरिक्त प्राण आत्मा के अर्थ में भी पाया जाता है। जैसे 'प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रतिजायसे' इत्यादि और अथर्ववेद ११-४-५ में प्राण वर्षा का वाचक है। जैसे :

यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम्।
पशवस्तत् प्रमोदन्ते महो वै नो भविष्यति॥

वेद मन्त्रों में प्राण और भी कई स्थानों पर आता है।

शरीर में प्राण, जीवन के साथ आत्मा और मन के साथ गर्भ में आता है और मृत्यु के समय आत्मा के साथ ही जाता है। वह बहुत सूक्ष्म है। दिखाई नहीं देता।

जैमिनी उपनिषद् में 'प्राणो वै अन्तरिक्ष' आता है। अर्थात् अन्तरिक्ष प्राण है। सब भूमण्डल में व्यापक है।

प्रश्नोपनिषद् में पिप्पलाद मुनि कहते हैं—'रयिं च प्राण इत्येतौ'। यहाँ पर प्राण नर शक्ति का द्योतक है।

कई मन्त्रों में सूर्य को प्राण बताया गया है क्योंकि सूर्य से जीवन है। सूर्य जीवन की रक्षा करता है, यदि संसार में सूर्य न हो तो कुछ भी जीवित न रहे। कहा है 'सूर्यस्त्वं ज्योतिषां पतिः'।

प्राण और वायु में भेद है। चाहे श्वास में वायु ही अन्दर जाता है। पर वायु में जो (Oxygen) है, वह ही प्राण है। उसी से जीवन कार्य चल रहा है। यदि प्राण का आना-जाना बन्द हो जाये तो मृत्यु हो जावे।

यह प्राण सुषुप्ति में भी चलता रहता है। जब और सब इन्द्रियाँ और मन भी दीर्घ निद्रा में सोया होता है, प्राण फिर भी चलता रहता है।

प्राण की महानता का वर्णन करते हुए एक वार्ता है। एक समय शरीर की इन्द्रियों में वाद-विवाद हो गया कि हम में कौन बड़ी हैं। चक्षु, नासिका, कान सब डींग मारने लगे कि हम बड़ी हैं। ऋषि ने कहा, तुम में वह बड़ा है जिसके शरीर से चले जाने पर मृत्यु हो जाती है। पहले आँख गई, पर फिर भी मनुष्य जीवित रहा; इसी प्रकार बारी-बारी सब इन्द्रियाँ जाती रहीं पर मनुष्य दुखी होकर भी जीवित रहा। फिर प्राण जाने लगा, तब सब इन्द्रियाँ मुर्दा-सी हो गईं। प्राण को जाने से रोकने लगीं। सो प्राण से ही जीवन है।

जब तक जीव मुक्त नहीं होता, तब तक प्राण जीव के साथ रहता है, फिर वह cosmic प्राण में मिल जाता है।

प्राण सामवेद की न्याईं है। साम का गायन बिना प्रबल प्राण शक्ति के नहीं हो सकता।

वैदिक काल में प्राण का बड़ा मान था। पिता जन्म के समय पुत्र को कहा करता था—'प्राणो भव'। तू प्राण हो। शक्तिशाली हो। वेदपाठी को इस शब्द के अर्थों का ध्यान रखना चाहिए। नहीं तो वेद।मन्त्र के ठीक अर्थ नहीं जाने जाते। जो मनुष्य प्राण-विद्या को जानते हैं, उनकी आयु दीर्घ होती है। प्राण मन की न्याईं आत्मा का एक साधन है। कहते हैं कि मनुष्य की आयु निश्चित है। उसके प्राण निश्चित हैं। यदि वह प्राण को लम्बा कर सकता है तो इस तरह उसकी आयु दीर्घ हो जाती है।

प्राण द्वारा ही जीव गर्भ में जाता है, प्राण से पलता है। भोजन का जो सूक्ष्मतम भाग होता है, उससे प्राण बनता है। यहाँ पर प्राण 'बल अर्थात् वीर्य' है, जो जीवन-पोषक होता है। प्राण तेजोमय है।

प्राण से तेज आता है, यदि प्राण बलवान् हो। प्रभु ने सृष्टि रचने की इच्छा की और तप तपा, उसने आत्मा को प्राणमय बनाया। प्राण को द्युलोक के समान बताया है। उसको सामवेद की न्याईं बताया है। सामवेद का गायन बिना प्राण शक्ति के नहीं हो सकता। प्राण का शरीर आश्रय जल है। जीवन जल का आश्रय है। चन्द्रमा प्राण का प्रकाशमय रूप है। प्रभु प्राण का भी प्राण है। वह प्राण नहीं लेता, पर प्राण उसी की कृपा से चलता है। वह प्राण को उत्पन्न करता है। प्राण भी उसी का आश्रय है। जब आत्मा मुक्त हो जाता है, उसका प्राण cosmic प्राण में मिलता है। उपनिषदों में प्राण की अनन्त महिमा है। प्राण ही वेद का स्रोत है। सामवेद का साम है और प्राण यजु है क्योंकि वह सब अंगों को शरीर में जोड़े रखता है। प्राण ही वीरभाव है। इसीलिये पिता जन्म होने पर पुत्र को कहता है 'प्राणो भव।'

अथर्ववेद में एकादश काण्ड में चौथा सूक्त प्राण-सूक्त है। उसमें प्राण की बड़ी महिमा बताई है। यह सारा संसार प्राण के वश में है। इस सूक्त में २६ मन्त्र हैं। इनमें प्राण ईश्वर का वाचक है और कहीं वर्षा का, कहीं प्राणवायु का, कहीं सूर्य का।

इसलिये प्राण शब्द के विभिन्न अर्थ होते हैं। इनके जाने बिना वेद-मन्त्रों के अर्थ ठीक नहीं समझे जा सकते। वेद के विद्यार्थी को यह जानना आवश्यक है। पाश्चात्य भाष्यकार प्राण के केवल प्रचलित अर्थ करके भ्रमजाल में फंस जाते हैं।

वेद में ऋत का स्वरूप

ऋत शब्द ऋ धातु से बना है जिसका अर्थ 'जाता रहे'। इस कारण ऋत वह है जो 'चलता रहे'। इसका आधार सत्य पर है। इसी कारण इसको धर्म भी कहा है। इसका तात्पर्य 'प्राकृतिक नियमों

से है।' ऋग्वेद (१०-१९०-१) में आता है कि 'ऋतं च सत्यं चाभिद्धात्तपसोऽध्यजायत।' अर्थात् प्रभु के तप से पहले धार्मिक और प्राकृतिक नियम बने। देवता भी इन नियमों से बँधे हैं (पालन करते हैं)। उनको धृतव्रताः कहा है। सारे संसार में कुछ नियम काम करते दीखते हैं। सूर्य चन्द्र-ग्रह दिन रात किसी नियम पर चल रहे हैं। सर राधाकृष्ण ने अपनी पुस्तक 'Indian philosophy' में लिखा है कि आर्यों ने संसार में इन नियमों को काम करते देखकर समझा कि बाह्य रूप ससार में और मानसिक जगत् में कुछ नियम पाए जाते हैं, जो सदैव enternal हैं। इनको उन्होंने ऋत बनाया। ऋ० (४-२३-८, १०) में ऋत का वर्णन विस्तार से है। वहाँ पर इसे 'enternal laws' कहा है। ऋ० १०-८५-१ में आता है कि 'सत्य से पृथिवी स्थिर है और ऋत से आकाश।' 'ऋ'=१२४-८ में कहा है कि ऊषा और सूर्य ऋत के कारण अपने-अपने मार्गों पर चलते हैं। ऋत स्थावर और जङ्गम सारे संसार को चला रहे हैं। सबको बाँधे हुए हैं। मन की क्रियाएँ, काल और स्थानों के बन्धन, सब ऋत के कारण हैं। यह सब एक अटल नियम से बँधे हैं। इनको cosmic laws भी कहा है।

ऋत का सम्बन्ध भलाई से है। यह बुराई के विरुद्ध है। ऋ० ९-७३-६ में आता है। 'ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः' दुष्ट पुरुष ऋत के मार्ग को ग्रहण नहीं करते। डॉ० ए० सी० बोस इस मन्त्र पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं कि ऋत की दृष्टि क्रूर है, वह बुराई को सहन नहीं करता। सो जो झूठ है, पाप है, कुटिल है, असत्य है वह अनृत है। अनृत दुर्बल है, ऋत बलवान् है। ऋत की सदा जय होती है। बुराई संसार में है पर मनुष्य उस पर विजय पा सकता है। ऋ० १०-७३-८ में यही बताया है।

ऋत शब्द से ही right शब्द बना है, जो इंगलिश भाषा में है। (rite)

ऋ० २-२३-१७ में आता है 'ब्रह्मणस्पतिर्द्रुहो हन्ता मह ऋतस्य धर्तरि।' कि प्रभु दुष्ट को मारते हैं और ऋत की रक्षा करते हैं। ऋत शब्द से ritual का (रिवाज-नियम-कानून), अर्थ लिया जाता है इसीलिए सायणाचार्य ने ऋत के अर्थ यज्ञ भी किये हैं। इस अर्थ में

वेद में ऋत का शब्द बार-बार आता है। ऋ० -८४१-४ में 'ऋतस्य मादने' यज्ञ के स्थान पर ऐसा कहा है।

विवाह की विधि और मृत्यु के समय जो रस्में की जाती हैं उनको भी ऋत कहा है। और वेद की आज्ञा है कि ऋत का विस्तार करो।' (ऋ० १-३१-८) उनको rituals कहते हैं। समय बीतने पर ऋत का भाव केवल यज्ञों और संस्कारों का रह गया। संस्कार मनुष्य जीवन में १६ करने बताए हैं। और यज्ञ तो बहुत हैं। यह कर्म-काण्ड ऋत समझा जाने लगा—और समय पाकर इसका विस्तार हो गया। परन्तु वेद में ऋत का शब्द बार-बार आता है। जैसे ऋत वाकेन-ऋत वहनं-ऋतद्युम्न-ऋतं पिबन्तौ-मनो वा ऋतं (Jaimini उप०) निघण्टु में ऐसा लेख है कि 'ऋतं सत्यनाम'। वैदिक काल में ऋत का सम्बन्ध सत्य से था। ऋ० १२-१-१ में ऋत पृथिवी का आधारभूत बताया है। ऋत का शब्द eternal Divine laws के लिए और यज्ञ (sacrifice) के लिए भी आता है। और ब्रह्म और तप का वाचक भी है।

Mr. Medonell says—'The word Rita is used to denote the order in the moral world as truth and right, as well as in the religious world as यज्ञ।

अर्थात् ऋत के दो अर्थ हैं। स्थूल जगत् में यह सत्य का वाचक है और धार्मिक जगत् में यह यज्ञ का वाचक है। डॉ० कुलकर्णी (पी-एच० डी०) भी ऋत की बाबत लिखते हैं कि It is the dynamic—ethical and aesthetic aspect of satya अर्थात् ऋत सत्य ही का dynamic ethical विस्तृत रूप है। यही शब्द पारसियों की पुस्तक Zend Awastha में रिथ है।

वेद के पाठकों को ऋत का वास्तविक स्वरूप जान लेना चाहिए।

वेद में पितर का स्वरूप

वेद-मन्त्रों में पितर शब्द स्थान-स्थान पर मिलता है। इस कारण अर्थों में कई बार भ्रम उत्पन्न हो जाता है। साधारण बोलचाल की भाषा में इसका अर्थ माता-पिता अथवा पूर्वज लिया जाता है, परन्तु वेद-मन्त्रों में इस शब्द के प्रकरण के अनुसार विभिन्न अर्थ हैं। इसका वर्णन हम आगे चलकर करेंगे।

पितर शब्द 'पितृ से बना है जिसका अर्थ है रक्षक। परमात्मा हमारा रक्षक है। वह भी पिता है। विद्वान् लोग अज्ञान को दूर कर मनुष्यों की रक्षा करते हैं। वे भी पितर कहाते हैं।

अष्टाध्यायी (१-२-७०) में यह शब्द पिता-पितामहा के लिए प्रयुक्त हुआ है। निरुक्तकार ने ऋ० १०-८८-१८ का अर्थ करते हुए पितर शब्द का अर्थ ज्ञानी जन लिखा है (४-२)। यास्क ने ऋ० १-१६४-१२ का अर्थ करते हुए इसका अभिप्राय संवत्सर बताया है। (४-२०)

ऋ० १-१६४-३३ तथा अथर्व० १२-१-१२ में यह पर्जन्य के लिए आता है।

मैत्रेय ब्रा० (२-३८) में 'प्राणो वै पितरः' बताया है। श० ब्रा० ने (१४-१-४-५) में इसके अर्थ सूर्य किये हैं। भगवद्गीता में पित शब्द चन्द्रवासी के लिए भी आता है। ऋ० ६-७३-३ में इसका अ सूर्य की रश्मियाँ हैं। यजु० १२-४५ में इसका अर्थ विद्वान् है। क पाठ इस प्रकार है—

येऽत्र स्थ पुराणा ये च नूतनाः।

यजु० (२५-२२) में इसके अर्थ पूर्वज हैं—यत्र पुत्रासो पि भवन्ति। ३८-१५ (पितृभ्यः स्वाहा) में पालयितृः अर्थ है। १०-१३८-६ में इसके अर्थ पालक हैं 'अहो आते पितरो नः पु पाठ है। यजु० १६-४२ में (धीराः पितरो न इन्द्रो देवेषु) म नीति के जानने वाले नेता लोग।

ऋ० ३-३९-४ में 'पितरो गोषु योधा अस्माकं' यहाँ पितर के अर्थ सैनिक हैं। वे शत्रु से रक्षा करते हैं। ऋ० ४-१७-१७ में पाठ है 'सखा पिता पितृतमः पितृणाम्। यहाँ पर पितर के अर्थ जनक हैं।

ऋ० १०-६४-१४ में 'पितृभिश्च मातरा मही देवी—यहाँ पर भी अर्थ है—पालक। जो भी पदार्थ जड़ हो या चेतन हमारी पालना करें।

ऋ० ६-९-५ (हतासो वां पितरो देव शत्रवः) में पितर प्रवचन-कर्ता वा ज्ञानी पुरुष हैं। ऋ० १-८८-१८ में भी पालक ज्ञानीजन हैं। पाठ है—'कवयो पितरो वदामि पृच्छामि'। निरुक्त इस स्थान पर लिखता है 'पितरो पातारो वा पालयितारो—

यजु० १९-५३ में पाठ है 'त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे धीराः।' यहाँ अर्थ अध्यापक अथवा गुरु हैं।

यजु० ३४-१७ (येना नः पितरः) में भी अर्थ विद्वान के हैं। मन्त्र में 'अंगिरस' शब्द के होने से प्राण-विद्या का सूचक है।

अथर्व० ७-१२-११ में पितर का अर्थ है राजपुरुष। निरुक्त २-१७ में प्रजापति रक्षो लिखता है।

यजु० २९-४६ तथा ऋ० ६-७५-९ में भी इसके अर्थ सैनिक हैं। पाठ इस प्रकार है—स्वादुषंसदः पितरो व योधा। ऋ० १०-७८-३ (योधा शिमीवन्तपितृणां न शंसाः) में भी सैनिक अर्थ है। ऋ० १०-१३०-१ में इमे वयन्ति पितरो—पितर शब्द प्राणों का वाचक है और ऋ० ८-४८-१२ 'यो न इन्दुः पितरो' में भी प्राण का द्योतक है। श० ब्रा० (६-६-१-५) में 'तस्मै सोमाय हविषा विधेम' में 'प्राणो व सोम' लिखा है।

यजु० १९-५४ (पितृभिः संविदानो) में पितर के अर्थ प्राण हैं। अथर्व० ३-२७-२ (पितरः इषव) में सायण ने तथा स्वामी दयानन्द ने इषवः का विशेषण पितर कहा है। यजु० २-३२ में 'नमो वः पितरो' पर श० ब्रा० (२-६-१-३२) में पितर को ऋतु का वाचक कहा है (सायण)। और यजु० २-२९ में भी ऋतु अर्थ है। ऋ० १०-६४-१२ (ध्रुवा एव वः पितरो युगे युगे) में पितर के अर्थ सूर्य की किरण है। ऋ० १०-६२-२ में भी यही अर्थ है। यजु० २-२९,

वेद में पितर का स्वरूप

वेद-मन्त्रों में पितर शब्द स्थान-स्थान पर मिलता है। इस कारण अर्थों में कई बार भ्रम उत्पन्न हो जाता है। साधारण बोलचाल की भाषा में इसका अर्थ माता-पिता अथवा पूर्वज लिया जाता है, परन्तु वेद-मन्त्रों में इस शब्द के प्रकरण के अनुसार विभिन्न अर्थ हैं। इसका वर्णन हम आगे चलकर करेंगे।

पितर शब्द 'पितृ से बना है जिसका अर्थ है रक्षक। परमात्मा हमारा रक्षक है। वह भी पिता है। विद्वान् लोग अज्ञान को दूर कर मनुष्यों की रक्षा करते हैं। वे भी पितर कहाते हैं।

अष्टाध्यायी (१-२-७०) में यह शब्द पिता-पितामहा के लिए प्रयुक्त हुआ है। निरुक्तकार ने ऋ० १०-८८-१८ का अर्थ करते हुए पितर शब्द का अर्थ ज्ञानी जन लिखा है (४-२)। यास्क ने ऋ० १-१६४-१२ का अर्थ करते हुए इसका अभिप्राय सवंत्सर बताया है। (४-२०)

ऋ० १-१६४-३३ तथा अथर्व० १२-१-१२ में यह पर्जन्यं के लिए आता है।

मैत्रेय ब्रा० (२-३८) में 'प्राणो वै पितरः' बताया है। श० ब्रा० ने (१४-१-४-५) में इसके अर्थ सूर्य किये हैं। भगवद्गीता में पितर शब्द चन्द्रवासी के लिए भी आता है। ऋ० ६-८३-३ में इसका अर्थ सूर्य की रश्मियाँ है। यजु० १२-४५ में इसका अर्थ विद्वान् है। वहाँ पाठ इस प्रकार है—

येऽत्र स्थ पुराणा ये च नूतनाः।

यजु० (२५-२२) में इसके अर्थ पूर्वज हैं—यत्र पुत्रासो पितरो भवन्ति। ३८-१५ (पितृभ्यः स्वाहा) में पालकेभ्यः अथ है। ऋ० १०-१३०-६ में इसके अर्थ पालक हैं 'यज्ञे जाते पितरो नः पुराणे' पाठ है। यजु० १६-५२ में (धीराः पितरो न इन्दो देवेषु) अर्थात् नीति के जानने वाले नेता लोग।

ऋ० ३-३९-४ में 'पितरो गोषु योधा अस्माकं' यहाँ पितर के अर्थ सैनिक हैं। वे शत्रु से रक्षा करते हैं। ऋ० ४-१७-१७ में पाठ है 'सखा पिता पितृतमः पितृणाम्। यहाँ पर पितर के अर्थ जनक हैं।

ऋ० १०-६४-१४ में 'पितृभिश्च मातरा मही देवी—यहाँ पर भी अर्थ है—पालक। जो भी पदार्थ जड़ हो या चेतन हमारी पालना करें।

ऋ० ६-९-५ (हतासो वां पितरो देव शत्रवः) में पितर प्रवचन-कर्ता वा ज्ञानी पुरुष हैं। ऋ० १-८८-१८ में भी पालक ज्ञानीजन हैं। पाठ है—'कवयो पितरो वदामि पृच्छामि'। निरुक्त इस स्थान पर लिखता है 'पितरो पातारो वा पालयितारो—

यजु० १९-५३ में पाठ है 'त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे धीराः।' यहाँ अर्थ अध्यापक अथवा गुरु हैं।

यजु० ३४-१७ (येना नः पितरः) में भी अर्थ विद्वान के हैं। मन्त्र में 'अंगिरस' शब्द के होने से प्राण-विद्या का सूचक है।

अथर्व० ७-१२-११ में पितर का अर्थ है राजपुरुष। निरुक्त २-१७ में प्रजापति रक्षो लिखता है।

यजु० २९-४६ तथा ऋ० ६-७५-९ में भी इसके अर्थ सैनिक हैं। पाठ इस प्रकार है—स्वादुषंसदः पितरो व योधा। ऋ० १०-७८-३ (योधा शिमीवन्तपितृणां न शंसाः) में भी सैनिक अर्थ है। ऋ० १०-१३०-१ में इमे वयन्ति पितरो—पितर शब्द प्राणों का वाचक है और ऋ० ८-४८-१२ 'यो न इन्दुः पितरो' में भी प्राण का द्योतक है। श० ब्रा० (९-९-१-५) में 'तस्मै सोमाय हविषा विधेम' में 'प्राणो व सोम' लिखा है।

यजु० १९-५४ (पितृभिः संविदानो) में पितर के अर्थ प्राण हैं। अथर्व० ३-२७-२ (पितरः इषव) में सायण ने तथा स्वामी दयानन्द ने इषवः का विशेषण पितर कहा है। यजु० २-३२ में 'नमो वः पितरो' पर श० ब्रा० (२-६-१-३२) में पितर को ऋतु का वाचक कहा है (सायण)। और यजु० २-२९ में भी ऋतु अर्थ है। ऋ० १०-६४-१२ (ध्रुवा एव वः पितरो युगे युगे) में पितर के अर्थ सूर्य की किरण है। ऋ० १०-६२-२ में भी यही अर्थ है। यजु० २-२९,

३०, ३१, ३२ में स्वामी दयानन्द ने पितर के अर्थ विद्वान् किये हैं।

ऋ० ७-३५-१२ (पितरो हवेषु) में पितर विद्वानों के लिए आया है।

'इमाः पितृलोकात् कन्यला पतिं यती०' (ऋ० १४-२-५२)—ये कन्याएँ पिता के घर से पति को प्राप्त होती हैं। पितृ शब्द मरे पितरों का वास-स्थान नहीं प्रत्युत जीवित का है।

और अ० १४-२-७३ में **'ये पितरो वधुदर्शी वहतुयागमन्"**— यहाँ पर पितर का अर्थ सम्बन्धी है।

यजु० २-३४ (स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन) में भी पितॄन माता-पिता, पितामहा, गुरु इत्यादि को अन्न घी-दूध वा मधु तथा फलों से तृप्त करता है।

अ० ६-१२३-३ ('देवाः पितरः पितरो देवाः यो अस्मि सो अस्मि') यहाँ पर पितर के अर्थ विद्वान्-परोपकारी धार्मिक पुरुष हैं जो रक्षा करते हैं।

अ० ६-१२०-३ (तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान्) में पितरौ का अर्थ माता-पिता है। उनको सुखी देखें। मृत को देखना सम्भव नहीं।

ऋ० ६-४६-१० ("भुवनस्य पितरं") में पितर शब्द ईश्वर का वाचक है।

अ० १८-३-१४ (परा यात पितर आ च यातायं) में प्राणों का वाचक है।

ऋ० १०-१५-११, यजु० १९-५८, अथर्व० १८-३-४४ में "अग्नि-ष्वात्ताः पितरः एह गच्छत" मन्त्रों में पितर सूर्य की रश्मि का वाचक है।

ऋ० १०-१५-७, यजु० १९-६३, अथर्व० १८-३-४३ में भी पितर का यही अर्थ है। अथर्व० १८-४-३६ 'उपासते पितरः स्वधाभिः' में जनक अर्थ है।

उपहुताः पितरः सोम्यासो (अ० १०-१५-५, यजु० १९-५७ तथा अ० १८-३-४५) में पितर शब्द ज्ञानीजन जो यज्ञ के समय निमन्त्रित हैं, बताता है।

अथर्व० १८-३-१६ (यद्धो मुद्रं पितरः सोम्यं च) में पितर विद्वान् उपदेष्टा का वाचक है। ऋ० १०-१६-१२ तथा यजु० १६-७० और ऋ० १८-१-५६ में पितृ शब्द सूर्य की रश्मियों के लिए प्रयुक्त हुआ है।

यजु० १६-५० में पाठ है—अंगिरसो नः पितरा नवग्वा···यहाँ पर पितर का अर्थ सूर्य है जिसको रश्मियों का, ऋतु से सम्बन्ध है। रश्मियाँ ऋतुओं में भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं।

यहाँ ऊपर कुछ मन्त्रों का उल्लेख दिग्दर्शन मात्र के लिए किया गया है।

पितर शब्द के ठीक-ठीक अर्थ न जानकर वेद मन्त्रों के अर्थ भी ठीक नहीं जाने जा सकते। जो विद्वान् लोग पितर का अर्थ मृतक पितर करते हैं और पितृ यज्ञ के सही रूप को छोड़कर श्राद्ध तर्पण आदि के ठीक भाव को नहीं जान पाये, वे भूल करते हैं। स्वामी दयानन्दजी ने उनकी इस भूल को बताकर अपनी पुस्तक "भाष्य-भूमिका" में उन मन्त्रों के अर्थ दिये हैं जिनमें कई भ्रम में फँसे लोग मृतक पितरों का श्राद्ध करने लगते हैं। यह बात वेद मन्त्रों का ठीक अर्थ न करने के कारण हुई है।

वेद मन्त्रों को ठीक अर्थ जानने से जाति और मनुष्य मात्र का कल्याण हो सकता है।

वेदों में गौ शब्द

वेदों में गौ शब्द भिन्न-भिन्न मन्त्रों में भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। मन्त्र का जो ऋषि हो, प्रकरण हो, उसी के अनुसार उसका अर्थ भी होता है।

गौ शब्द गम् धातु से बना है। 'गच्छति इति गौः'। कोष में इस शब्द के ४७ अर्थ किये गये हैं। जिस-जिस वस्तु में गमन है, वह 'गौ' है। जैसे गाय, पृथ्वी, किरण, लोग इत्यादि।

निरुक्त में भी इसके कई अर्थ किये गये हैं। दूध, घी, चरम इत्यादि पदार्थों के लिए भी यह शब्द कई मन्त्रों में आया है। निरुक्त के अनुसार 'गोभिः श्रृणीत वत्सरं' यह अर्थ सिद्ध होते हैं।

हठयोग-प्रक्रिया में यह शब्द जिह्वा के लिए प्रयुक्त हुआ है। श्री अरविन्द ने एक मन्त्र में इसका अर्थ 'मनोवेग' किया है। स्वामी दयानन्द ने एक मन्त्र में इसका अर्थ पृथ्वी किया है।

परन्तु पाश्चात्य विद्वानों ने तो जहाँ भी किसी मन्त्र इत्यादि में गौ शब्द देखा, इसका अर्थ गाय कर दिया। इसी कारण अपने भाष्यों में मन्त्रों के गलत अर्थ करके उन्होंने वेदों के गौरव को कम करने का यत्न किया है।

साधारणतया गाय के लिए गौ शब्द आता है परन्तु इसके लिए धेनु शब्द भी प्रयुक्त हुआ है। वैसे धेनु के भी प्रकरण के अनुसार कई अर्थ होते हैं।

ऋ० ८-३२-२५ में यह शब्द दूध के लिए आया है। ऋ० १०-९६-११ तथा १०-६८-६ में यह सूर्य की किरणों के लिए प्रयुक्त हुआ है।

ऋ० १०-४६-३ में यह मेघ के लिए आता है। इसी प्रकार ऋ० ९-७१-१ में यह शब्द दक्षिणा के लिए (जो यज्ञोपरान्त पुरोहित को दी जाती है) आया है।

ऋ० ७-८७-४ में यह वाणी का वाचक है। गावः इन्द्रियों का वाचक भी है। ऋ० १०-१०३-५ तथा १०-१३७-७ में पृथ्वी का वाचक है। सायण ने ऋ० ३-५६-१२ में भी इस शब्द का अर्थ पृथ्वी किया है। यहाँ शब्द धेनु है।

ऋ० ५-४५-६ में श्वेत गावः सूर्य की किरणों का वाचक है। यहाँ पर शब्द गवि भी है। ऋ० ५-४५-६ में पाठ है 'श्रृणुत व्रज गौः'। यहाँ इसका अर्थ है मेघ। ऋ० ५-३-३ में भी मेघ अर्थ है। ऋ० ५-४३-१ में शब्द धेनवः नदी का वाचक है। ऋ० ४-२३-९ में गावः का अर्थ है दक्षिणा। ऋ० ३-६-४ में शब्द है धेनु तथा इसका अर्थ पृथ्वी तथा आकाश है।

ऋ० ४-१६-७ में दूध न देने वाली गाय को वर्षा न करने वाले मेघ बताया है (dry cows)। इसी प्रकार धेनवः शब्द कई मन्त्रों में मेघ के अर्थों में है। ऋ० ४-२३-१० में 'धेनु दुहोत' पाठ है।

ऋ० ४-२८-१ में गोपति राजा को कहा है जो पृथ्वी का स्वामी है। धेनवः के अर्थ कई मन्त्रों में मेघ है। जैसे ऋ० ४-२२-६ तथा ३-५५-१६।

गौ शब्द के रूप गवि—गावि—गव्यु—गावः इत्यादि हैं। इनके भी भिन्न-भिन्न अर्थ हैं जिन्हें जानना आवश्यक है अन्यथा वेद मन्त्रों के अर्थ ठीक न होंगे। कई मन्त्रों में गौ शब्द गाय के अर्थ में आया है और गाय सम्बन्धी मन्त्रों में बहुत बातों का वर्णन है। परन्तु यदि इस शब्द के केवल गाय अर्थ ही सब मन्त्रों में किये गये तो भारी भूल होगी। वेद के वास्तविक अर्थ जानने के इच्छुक पाठकों को इसका ध्यान रखना चाहिए।

वेदों में अश्व के अर्थ

वेदों में अश्व का शब्द कई मन्त्रों में आता है, परन्तु इसके अर्थ केवल घोड़ा नहीं। पाश्चात्य विद्वानों ने तो जहाँ यह शब्द देखा वहाँ ही इसके अर्थ घोड़ा कर दिये। और इसलिए अश्वमेध के अर्थ यज्ञों में घोड़े का वध करना करते रहे। पर इस शब्द के अर्थ प्रकरण के अनुसार राष्ट्र व सूर्य, सूर्य की रश्मियाँ भी होते हैं।

श० ब्रा० (२-८-५) में लिखा है—"राष्ट्रं वा अश्वमेधः। वीर्यं वा अश्वः।।"

(ऋग्० १-१६३-६, १०) में (यजु० २६-२०) में "हिरण्य-शृंङ्गोऽयो अस्यपादा—वा दिव्यासो अत्याः—मश्वाः" आते हैं। जिससे स्पष्ट है कि यहाँ अश्व सूर्य का वाचक है और उसकी

चमकती सुनहरी किरणें हंसों की डार को न्याईं द्युलोक से आती हैं।

इसी प्रकार ऋग्० २-३५-६ में सूर्य का वाचक है।

मन्त्र यह है—

अश्वस्यात्र जनिमास्य च स्वर्द्रुहो रिषः संपृचः पाहि सूरीन्।
आमासु पूर्षु परो अप्रमृष्यं नारातयो वि नशन्नानृतानि ॥

ऋग्० १०-९२-८ और ऋग्० ८-५९-७ में अश्व सूर्य की किरणों का वाचक है। हरित शब्द भी सूर्य का वाचक है।

अथर्ववेद १३-१-२४ में भी किरणों के अर्थ में आया है।

ऋग्० १०-९२-८ में पाठ इस प्रकार है---

भीमस्य वृष्णो जठरादभिश्वसो दिवेदिवे सहुरिः स्तन्नबाधितः ॥

यहाँ भी इसके अर्थ किरणें हैं।

परन्तु ऋग्० ७-१-१२ में अग्नि की लाट को अश्व कहा है। यह मन्त्र इस प्रकार है—

यमश्वी नित्यमुपयाति यज्ञं प्रजावन्तं स्वपत्यं क्षयं नः।
स्वजन्मना शेषसा वावृधानम् ॥

ऋग्० १-६४-६ में इसके अर्थ मेघ हैं जो वर्षा करता है। यहाँ पर शब्द वाजिन् का आता है जो घोड़े का वाचक भी है।

वेद में अश्व के लिए कई शब्द आते हैं जैसे कि हरित, अर्वर, वाजिन्। यदि हम अश्व शब्द के "Root meanings" भी देखें तो यह शब्द अशु धातु से बना है जिसका अर्थ शीघ्रगामी है। कोश में भी इस शब्द के अर्थ यही बताये हैं। यास्काचार्य ने इसके अर्थ निरुक्त में अश्व क्षेमते शीघ्रगामी किये हैं।

अश्व शब्द के और भी कई अर्थ हैं। (श० ब्रा० में ८-८-२७) में लिखा है **"वज्रो वै अश्वः"। वीर्यं वः अश्वः। अग्निर्वा अश्वः।** और (२-१-४) में **राष्ट्रं वा अश्वः।** बृहदारण्यक उपनिषद् में अश्व के अर्थ (१-१-१) में ईश्वर का विराट जगत् किये हैं।

कई टीकाकारों ने मेध्यस्य अश्वः के अर्थ यज्ञ का घोड़ा किये हैं। यह उनकी भूल है। मेध धातु का अर्थ "मेधा-हिंसा वा संगम" है।

महाभारत में अश्वमेध का वर्णन करके लिखा है कि घोड़ों के मेले होते हैं जिनमें घोड़ों के करतब व दौड़ आदि होते हैं। (महाभारत) (प्रदर्शिनी)।

यजुर्वेद (२३-१७) से प्रतीत होता है कि अग्नि, वायु व सूर्य को यज्ञ के पशु बताया है।

यजु० (३१-१६) यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः के अर्थ करते हुए निरुक्त में (१२-४५) यास्काचार्य ने लिखा है कि देवताओं ने अग्नि से अग्नि यज्ञ किया।

वेदों में जहाँ कहीं पशु याग का वर्णन प्रतीत होता है वहाँ इन्हीं आधिदैविक यज्ञों का वर्णन है। इसी प्रकार ऋ० १-१६३ में सूर्य को अश्व कहा है। इसका संकेत हमें स्वयं इसके मन्त्रों से मिलता है। इनसे स्पष्ट है कि इन मन्त्रों में किसी दैनिक यज्ञ का संकेत है जिसको न जानकर घोड़े के वध से यज्ञ करने के अर्थ अज्ञानता से किये जाते हैं।

तैत्तिरीय संहिता (५-७-५२) में 'असावादित्योऽश्वमेधः'। अर्थात् सूर्य का यज्ञ ही अश्वमेध है।

कई वेद मन्त्रों में अश्व शब्द घोड़े के लिए ही आया है। यजुर्वेद में बहुत मन्त्र आते हैं जिनमें घरों में घोड़ों का पालना, उनका लाभ, गाड़ी खींचने, हल चलाने, सवारी करने, युद्ध में शत्रु का नाश करने में प्रयोग किये जाने का वर्णन है। उनके बल का, उनके शीघ्रगामी होने का, उनको सिधाने का भी वर्णन आता है और यह भी आता है कि घोड़ों को सजाते हैं, सुन्दर वस्त्र उसके ऊपर डालते हैं। घोड़ों के मांस खाने का निषेध भी आता है और घोड़ों के वध से यज्ञ करने का भी निषेध है। (अथर्व ७-५-५) घोड़े की ३४ प्रकार की चाल का वर्णन (यजु० २५-४१) यहाँ तक कि घोड़े को मालिश करने, नहलाने, बाँधने, लगाम डालने, चाबुक मारने आदि कई बातों का वर्णन यजुर्वेद के २५ तथा २९वें अध्याय में आता है। विस्तार के डर से हम मन्त्रों को नहीं दे रहे।

वेद के पाठकों को मन्त्रों का अर्थ करते समय वेद मन्त्रों के अर्थ ठीक जानने की "Technique" को जानना चाहिए। स्वामी दयानन्द जी

ने इस विषय में हमें मार्ग प्रदर्शन किया है। यदि उसके अनुसार हम वेद-मन्त्रों के अर्थ करेंगे तो वेदज्ञान का हमें उत्तम रूप दिखाई देगा। और पता चलेगा कि मध्यान्तर काल में और पाश्चात्य विद्वानों ने कैसे अर्थ के अनर्थ किये हैं।

वेदों में संयुक्त शब्दों के अर्थ

वेदों में ऐसे बहुत से शब्द मिलते हैं जो देवताओं के वाचक हैं। जैसे अग्नि, इन्द्र, वरुण। ऐसे शब्दों का वर्णन हम पूर्व के कई लेखों में कर चुके हैं। इनके अर्थ प्रकरण के अनुसार भिन्न-भिन्न हैं।

इनके अतिरिक्त ऐसे शब्द भी हैं, जो इनको जोड़कर बनते हैं जैसे इन्द्राग्नि, इन्द्रावरुण, मित्र-वरुण, इन्द्र सोम, इन्द्र-पूषण, अग्नि-मरुत्, अग्निषोम, सोमरुद्र, सोमपूषण। इन संयुक्त शब्दों के अर्थ भी भिन्न-भिन्न हैं। ये शब्द निम्न स्थलों पर आये हैं—

इन्द्राग्नि—ऋ० १-२१, १०८, १०९; ३-१२; ५-८; ६-५९; ६०; ७-९३; ९४; ८-४०; ८८।

इन्द्रावरुण—१-१७; ४-४१, ६-६८; ७-८२, ८४, ८५।

मित्रवरुण—यजु० ७-९, १०, ऋ० ७-६०, ६१, ६२, ६३, ६५, ६६।

इन्द्रसोम—६-७२, ७-१०४।

इन्द्रपूषण—६-५७।

इन्द्रविष्णु—६-६७; अग्निमरुत्—१-१९; इन्द्रवायु—य० ७-८; अग्निषोम—१-९३, २-१५; सोमरुद्र—६-७४; सोमपूषण—२-४०।

अथर्ववेद तथा यजुर्वेद के कई अन्य मन्त्रों में भी ये शब्द आये हैं।

पाश्चात्य विद्वानों ने तो अपने भाष्यों में इन शब्दों को ऐसे ही रख दिया है तथा इनको (twingods) बताया है। परन्तु वास्तव में इनके अर्थ भिन्न-भिन्न मन्त्रों में भिन्न-भिन्न हैं। कहीं पर ये ईश्वर

के वाचक हैं, कहीं पर दैवी शक्तियों के, कहीं राजा तथा मन्त्री के, राजा सेनापति के अथवा राजा कर्मचारियों के। इसी प्रकार कहीं प्राण-अपान और कहीं प्राण-उदान के। इस कारण पाश्चात्य भाष्यों में मन्त्रों के अर्थ ठीक तथा स्पष्ट नहीं हैं।

हम सांकेतिक रूप में कुछ मन्त्रों का उल्लेख देकर इनके अर्थों का निरूपण करेंगे।

इन्द्राग्नि—ऋ० ७-३५-१ में इसका अर्थ विद्युत् अथवा अग्नि है। ऋ० ७-३५-१६ में विद्युत् और जल है। यजु० ७-३१ में राजा और कर्मचारी है। यजु० ३३-६१ व ९३ और ३३-४९ में इसका अर्थ सेनापति है। यजु० १७-६४ में राजा तथा सेनापति है। यजु० २५-५ में यह शरीर की पसलियों का अर्थ देता है। यजु० १४-११ में इसका अर्थ राजा तथा सेनापति है। ऋ० १-१०९-५ में इसका अर्थ विद्युत् (lightening) तथा ऋ० १-१०८-४,८ में विल्सन ने इसका अर्थ पुजारी और उसका सहायक (Priest and his assistant) किया है। 'Benefy' इसका अर्थ 'Dual epithet of gods' करता है। यजु० २-१५ में इसका अर्थ बल तथा तेज है। श० ब्रा० ने (४-३-१-२२ में) इसका अर्थ प्राण-उदान किया है।

इन्द्रावरुण—ऋ० ७-८२ तथा ८३ में इसका अर्थ स्वतन्त्र सम्राट् है (Independent sovereign)। यह परमात्मा का भी वाचक है। अ० ७-५८-१, २ में यह दैविक शक्तियों का सूचक है। ऋ० ६-६८-३ में भी इसका यही अर्थ है।

मित्रवरुण—ऋ० ७-६१-३ में इसका अर्थ प्राण-उदान है। ऋ० ७-६२-३ में इसका अर्थ अध्यापक तथा उपदेशक है। ऋ० ५-५१-१४ में इसका अर्थ प्राण-अपान है। य० ७-९ में यह राजा का वाचक है तथा य० ७-१० में इसके अर्थ राजा तथा कर्मचारी हैं। ऋ० ७-३३-११ में जल की उत्पत्ति का वर्णन है। मित्र तथा वरुण दो प्रकार की वायु से विद्युत् तथा जल बनाते हैं। य० ७-१० में इसके अर्थ गुरु तथा शिष्य किये गए हैं। सायण ने ऋ० ५-६२-३ का अर्थ करते हुए इन्हें जल लिखा है। अथर्व० ५-२४-५ में यह वर्षा के अर्थ में आया है। ५-१९-१५ में भी यह वर्षा का सूचक है।

इन्द्र-सोम—यह शब्द ऋग्वेद म कई बार आता है। ऋ० ७-१०४ में इसके अर्थ राजा और मन्त्री किये हैं। यह न्यायकारी राजा का द्योतक है। ऋ० १०-१०३ में इसके अर्थ विद्वान् व शूरवीर सैनिक हैं। ६-७२ में यह दैविक शक्ति है जो सूर्य को ऊपर ले गई।

इन्द्र-वायु—यजु० ७-८ में इसके अर्थ राजा का सेनापति किये हैं। यह यजु० ३०-४५ व ५० में भी आता है। अर्थ वायु या विद्युत् होते हैं। ऋ० ४-४६-६, ४-४७-३ में यह 'gods' (अश्विनौ) का सूचक है।

इन्द्रपूषण—ऋ० ७-३५-१ में इसके अर्थ बिजली और जल किये हैं। यजु० २५-२५ में इसके अर्थ ऐश्वर्यवान् राजा हैं।

सोमरुद्र—यह शब्द ऋ० ६-७४-१७ में आता है। वहाँ पर इसका अर्थ रोगनाशक औषधि है।

इन्द्र-विष्णु—ऋ० ६-६९ में यह परमात्मा का वाचक है।

इन्द्र-वरुण—ऋ० ४-४१-१, ४, ५, ६, ११ में यह युद्ध में विजय प्राप्त कराने वाला देवता है। वशिष्ठ और विश्वामित्र ने इनकी सहायता से सुदास राजा को विजय प्राप्त कराई थी।

इन्द्रमरुत्—यजु० ३३-६४ में यह शब्द आता है। वहाँ पर इसके अर्थ इन्द्र के सहायक हैं। इन्द्र ने वरिज को जब मारा तो मरुत् सहायक थे। परन्तु इसके अर्थ शूरवीर सैनिक भी हैं।

अग्नि, मरुत् और अग्निषोम यक्षों के नाम भी हैं, जिनका वर्णन ऋग्वेद में मिलता है।

ऋ० १-१७-१ के अर्थ करते हुए ग्रिफिथ ने अपने भाष्य में लिखा है कि ये शब्द (Twin and conjoint deities) के वाचक हैं।

अदिति

वेदों में अदिति इत्यादि कई शब्द हैं जिनका समझना आवश्यक है। अदिति शब्द वेदों में बार-बार आता है। इसके अर्थ विभिन्न मन्त्रों में भिन्न-भिन्न हैं। दैविक शक्ति, प्रकृति, पृथिवी, माता आदि। ये प्रकरण के अनुसार बदलते रहते हैं। निघण्टु (१-११) में लिखा है 'अदितिरिति वाङ्नाम।' श० ब्रा० इसके अर्थ (६-५-२-५ में) विद्युत् करता है। अदिति को देवों की माता कहा है। इसके आठ

पुत्र अग्नि, इन्द्र, आदित्य आदि हैं। मैक्समूलर इसके अर्थ अपने ऋग्वेदभाष्य में (Infinite nature or endless expanse) करता है। मूर (Mur) इसके अर्थ Nature करता है। Roth ने इसके अर्थ 'Freedom Or Securety' किये हैं। Benefy इसके अर्थ 'Sinlessness' करता है। सायण ने इसके अर्थ पृथिवी किये हैं।

सरस्वती

इस शब्द के भी वेद-मन्त्रों में भिन्न-भिन्न अर्थ पाये जाते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में इसके १३ अर्थ दिये हैं और निघण्टु में ५७। प्रकरण के अनुसार इसके कई अर्थ होते हैं। ऋ० (७-९-५) में इसका अर्थ 'वाणी' है। श० ब्रा० (७-५-१-३१ में, ऋ० (१-१३-९ व ७-१०-०) में इसके अर्थ वाक् करता है। पं० सातवलेकर इसके अर्थ विद्या करते हैं। कई मन्त्रों में यह विद्या की देवी है। (जैसे अथर्व ७-६८-१, ३ व १८-४-४५, ४६, ४७ तथा ऋ० १०-१७-७, ८, ९ व १-९५-१, २ में)। कुछ मन्त्रों में यह सरस्वती नदी है जैसे ऋ० १०-७५-५ व ७-३६-६, ६-६१, ७-९६-२१ तथा १-२६-१७, १८ में। विवाह के मन्त्रों में यह 'वधू' की सूचक है। (जैसे अथर्व १४-२-१५ में। सरस्वती पावका अग्नि भी है। (ऋ० २-४१-१६)। सरस्वती एक औषधि का नाम भी है। अथर्व ७-६८-१) सरस्वती नदी के रेत में सोना होता है। (ऋ० ७-६८-३ में)

वेदों में विश्वदेवा वा विश्वकर्मा

वेद में कई मन्त्रों में 'विश्वदेवा' का शब्द मिलता है। जैसे ऋ० १-१४-८९, ९०, १०६, १०७, १२२, १३९, १९६ सूक्तों में। ऋ० २-२९, ३१, ३-५४ से ५७ तक, ४-५५। ५-४१ से ५१ तक, ६-४९ से ५२ तक, ७-३४, ३६, ३७, ३९, ४०, ४२, ४३, ८-२७, ३०, ७२,

१०-३१, ३५, ३६, ६३ से ६६ तक ९२, ९३, १०० में। और भी कई मन्त्रों से इसका सम्बन्ध है। ऋग्वेद के अतिरिक्त अन्य वेदों में भी बहुत-से मन्त्र हैं जिनमें यह शब्द आता है।

वेदों में यह एक अद्भुत तथा निराला शब्द है। यह शब्द बहु-वचन में होता हुआ भी एक परमात्मा का वाचक है। (This multiple conception of God denotes the One God.)

इस शब्द के अर्थ कई टीकाकार 'सारे देवता' करते हैं। श्री ए० सी० बोस ने इसके अर्थ all gods किये हैं। श्री विल्सन ने "Lord of all the gods" किये हैं। श्री ग्रिफिथ ने a class of deities करके लिखा है—"It may refer to special class of deities."

सायण इसके अर्थ करते हुए लिखता है, "वह जिनको ज्ञान प्राप्त है कुछ भी हों।"

सर्वप्रथम यह शब्द ऋ० १-३-७, ८, ९ में आता है। वहाँ यह दैविक शक्तियों के लिए प्रयुक्त हुआ है। जिस सूक्त में अग्नि इत्यादि देवताओं का वर्णन हो, वहाँ पर सूक्त का विषय विश्वदेवा होता है, जैसे ऋ० १·१४ में। ऋ० ४-५५ में भी यही है। यजु० ३३-९० में इसके अर्थ सन्त तथा ऋषि (saints and sages) हैं। ऋ० १-८९-१० में अदिति को ही विश्वदेवा कहा है।

जिन-जिन मन्त्रों में कई देवताओं की स्तुति की गई है, उनका देवता विश्वदेवा है।

यजुर्वेद में भी कई मंत्रों का देवता विश्वदेवा है। ७वें तथा ८वें अध्याय में विश्वदेवाः गृहपत्याः। ऐसा लेख है। १३, १५, १९, २०, २२, ३१, ३३ तथा ३५वें अध्याय में कुछ मन्त्रों का देवता विश्वदेवा है। यजु० ३-२१ में भी देवता (विषय) है।

यजु० ८-४९ में उनको प्रजापतयः कहा है। वैदिक देवतावाद की सुन्दरता यही है कि भिन्न-भिन्न नाम लेते हुए भी वह सब एक ब्रह्म का वाचक है। भाव अद्वैत का ही है। वेद के इस ढंग technique को जानना आवश्यक है।

विश्वकर्मणः अथवा विश्वकर्मा

वेद में कई मन्त्रों में यह ऋषि है जैसे यजु० १४-१२, १८-१४, ६५ तथा ३१-१७ में। यजु० १७-१७ से ३३ तक भी यह ऋषि है परन्तु १७-७८ में यह देवता है। यजु० १८-४३ में भी यह शब्द मिलता है।

यह परमात्मा का वाचक है जो संसार का रचयिता है। (He is doer of all deeds)

श० ब्रा० में इसके विषय में लिखा है—'वाग् वै विश्वकर्मा।' वाणी विश्वकर्मा है क्योंकि इससे ज्ञान की प्राप्ति होती है।

यजु० १-४ में विश्वकर्मा परमात्मा का वाचक है परन्तु यजु० १८-६४, ६५ में इसके अर्थ राजा हैं।

ऋ० १०-८१, ८२ का यह देवता है। वहाँ यह परमात्मा का वाचक है। श्री ग्रिफिथ लिखता है—Universal father, generator, architect of the world and the creator of all things.

श्री विल्सन ने इसको Inventer कहा है। सायण ने इसके अर्थ "सबका रचयिता" किये हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थों में इसका अर्थ राजा, प्रजापति तथा पति भी किया है।

आज के विद्वान् विश्वकर्मा को इंजीनियर (engineer) भी कहते हैं। इस शब्द की विचित्र माया है। यह किसी स्थान पर ऋषि है तो किसी अन्य स्थान पर देवता। पर यह ईश्वर का वाचक है।

त्वष्टा

यह शब्द भी वेदों में कई स्थानों पर मिलता है। यह भी परमात्मा का वाचक है। परमात्मा की जो शक्ति पदार्थों को रचती है वह त्वष्टा कहलाती है।

गर्भ में बालक का पालन-पोषण करना, उसके अंग बनाना, उसके शरीर की रचना करना, ये सब कार्य त्वष्टा के बताये गये हैं। ऋ० १०-१८४-१ में उसे सुजनिमा अथवा सजोषा बताया है। गर्भ में

बालक की रचना करता है। "त्वष्टा रूपाणि पिंशतु," ऋ० १०-१८४-१ में आता है।

(Maker of fair forms लिखा है।) यहाँ भी ईश्वर का वाचक है।

ऋ० १-१३-१० में इस शक्ति का जन्म सर्वप्रथम होना बताया गया है। यह शब्द कई मन्त्रों में दूसरे देवताओं के साथ भी आता है। श्री ग्रिफिथ ने इसको an artificer of gods—an ideal artist and a skifful worker कहा है। पुराणों में इसे देवताओं का शिल्पी कहा है। इसने इन्द्र का धनुष वनाया था।

वेदों में गन्धर्व और अप्सरा के अर्थ

वेदों में गन्धर्व व अप्सरा शब्द कई मन्त्रों में आते हैं। परन्तु इन शब्दों के अर्थ ठीक-ठीक न जानने से तो बहुत ही भ्रान्ति हुई है और अर्थ न करने में वहुत भूल हुई है।

गन्धर्व शब्द के विषय में यास्क लिखता है—'यो गां पृथिवीं धारयति स: गन्धर्व:' अर्थात् जो गाय, रश्मि अथवा पृथिवी को धारण करता है, वह गन्धर्व है। उव्वट्-महिधर-सायण आदि भाष्यकारों ने तथा ग्रिफ़िथ आदि पाश्चात्य विद्वानों ने इस शब्द के अर्थ 'देवता' किये हैं। यह एक 'heavenly deity' (ऋ०—५-४१-७) और ऋ०—१०-६५ में 'heavenly sirger' है।

परन्तु इसके अर्थ प्रकरण अनुसार भिन्न-भिन्न होते हैं। कहीं पर इसके अर्थ सूर्य हैं, कहीं राजा, कहीं पर मेघ, कहीं पर क्रिमि और कहीं अन्तरिक्ष व समुद्र में वास करने वाला।

यजु० २-३ में इसके अर्थ सूर्य हैं। गौ सूर्य की रश्मि को भी कहते हैं। उनको धारण करने वाला सूर्य है।

यजु० १८-३९ में इसके अर्थ राजा हैं। उसकी प्रजा अप्सरा है। गन्धर्व और अप्सरा का सम्बन्ध पति-पत्नी का भी है। गन्धर्व को अप्सरा का पति कहते हैं। ऐसा अथर्व० ४-३७-७ में आता है।

मेघ को भी गन्धर्व कहते हैं और बिजली को अप्सरा। मेघों को पुरुरवा भी कहते हैं और बिजली को अप्सरा उर्वशी कहा है। यह एक आलंकारिक वर्णन (ऋ०—१०-९५ में) है बिजली मेघों में कार्य करती है, चमक होती है, गर्जना करती है, वर्षा होती है। वर्षा उनका पुत्र है; इस कारण जलों को अपसरस् कहा है।

गन्धर्व प्रजापति परमात्मा को भी कहते हैं जो संसार अथवा वेद वाणी को धारण करता है। गौ वहाँ पर पृथिवी व वाणी है। सारी प्रजा उसकी सन्तान है। (यजु०—१८-४२)।

वायु भी गन्धर्व है। वह अन्तरिक्ष के जलों को धारण करता है। अन्तरिक्ष के जल अप्सरा हैं। (यजु०—१८-४१)

ऋग्० १०-१२३-७ में भी पुरुरवा मेघ है और गन्धर्व है और जल अप्सरा है। अथर्व० २-२-३ में समुद्र गन्धर्व है और समुद्र के वासी अप्सरा हैं। अथर्व० ४-३७-८, ११, १२ में क्रिमि हैं और अप्सरा उनका नाम है और गन्धर्व नाम के भी क्रिमि हैं। ये रोग उत्पन्न करते हैं। अथर्ववेद १९-३६-६ में भी इनका वर्णन है। अथर्ववेद ८-५-१३ में भी क्रिमि हैं। अथर्व० २-२-४ में गन्धर्व सूर्य है। अथर्व० २-१-२३ में गन्धर्व एक औषधि का नाम है। ऋग्० ८-७७-५ में गन्धर्व का अर्थ सूर्य है सूर्य की रश्मियाँ जल का वाष्प बनाती हैं।

ऋग्० १-१६३-६ में गन्धर्व अन्तरिक्ष का एक देवता है जो सोम की रक्षा करता है। ऋग्० १-१६३-२ में आता है कि गन्धर्व और अप्सरा वायु में वास करते हैं। वे दिव्य शक्तियाँ हैं।

ऋग्० १०-८५-४० में गन्धर्व को कुँवारी कन्या का पति कहा है, जब उसमें युवा अवस्था आने लगती है और राग के भाव उत्पन्न होने लगते हैं।

ऋग्० १०-८०-६ में गन्धर्व पथ का शब्द आता है। ग्रिफिथ ने उसके अर्थ 'divine path' किये हैं।

ऋग्० १०-५३-५ में यह पाठ आता है—'देव गन्धर्व पिता असुरा वा।' यह चार प्रकार की जनता बताई है। मनुष्यों के चार भाग हैं। ऋग्० ६-११३-२ में गन्धर्व सोम के रक्षक हैं।

ऋग्० १०-१२७-२, ८-१-११ और १०-१२३-४ में गन्धर्व सूर्य का वाचक है। यह गन्धर्व एक जीव का भी नाम है।

यजु० ११-७ में यह पाठ आता है—'दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः' यहाँ पर गन्धर्व वेद वाणी का कर्त्ता परमात्मा है।

ऋग्वेद में कई स्थानों पर गन्धर्व के यौगिक अर्थ किये गये हैं और उनको उच्चकोटि के मनुष्य कहा है।

जो मनुष्य गायन विद्या में निपुण हो, उसको भी गन्धर्व कहते हैं।

गन्धर्व-विवाह में यह शब्द 'प्रेम विवाह (Love marriage) का वाचक है। गन्धर्व और नारद मेघों के नाम भी हैं। (यजु० १३-४५ व १५-२० में)।

ऋग्० १०-१२६-८ में वर्णन आता है कि गन्धर्व ने गौरी को छुपा रखा है। यहाँ पर गौरी पृथिवी है। यह एक आलंकारिक वर्णन है।

यजु० १८-४० में गन्धर्व के अर्थ चन्द्र किये हैं; क्योंकि वह सूर्य की किरणों को धारण करता है। नक्षत्र उसकी अप्सरा है।

अप्सरा

यह शब्द भी वेद मन्त्रों में बहुत बार आता है। पर प्रायः यह गन्धर्व के साथ ही आता है। परन्तु कभी पृथक् भी आ जाता है।

जब तक इसके अर्थों को ठीक-ठीक न जाना जाये भ्रान्ति होनी स्वाभाविक है। भाष्यकारों ने इसके अर्थ ठीक न करके भूल की है और अनर्थ किये हैं। पाश्चात्य विद्वान् इसे एक 'nymph' अथवा 'heavenly fairy' अर्थात् परी कहते हैं।

शब्द अप्सरा 'अप्सु सरति इति अप्सरा' ऐसा निरुक्त में लिखा है। अथवा अन्तरिक्ष स्थानों में फिरने वाली बिजली है। इसी प्रकार उर्वशी—उरु ऋशः अर्थात् दूर तक व्यापक विद्युत् है।

ऋग्० १०-६५ में पुरुरवस् कोई व्यक्ति विशेष नहीं है, परन्तु मेघ है और उर्वशी विद्युत् है। इस सूक्त में एक प्राकृतिक घटना का वर्णन है। मैक्समूल्लर इनको सूर्य और उषा समझता है।

कई भारतीय विद्वान् भी अप्सरा के अर्थ परी करते हैं। परन्तु इसके भी कई अर्थ हैं। प्रकरण अनुसार भिन्न-भिन्न हैं। इनका ऊपर वर्णन गन्धर्व के साथ आ चुका है।

सायण ने इसका अर्थ एक स्थान पर स्त्री किया है। यास्क ने इसे अन्तरिक्ष की एक भौतिक शक्ति बताया है।

स्कन्द स्वामी ने पुरुरवा को मेघ और अप्सरा को विजली माना है। मैकडानल ने भी विजली अर्थ किये हैं।

ऋग्० ६-२८-३ में अप्सरा का सम्बन्ध समुद्र से है। ऋग्० ७-३३-११ में यास्क ने इसके अर्थ बिजली किये हैं।

अथर्व० २-२-३ में अप्सरा को गन्धर्व की पत्नी कहा है। अथर्ववेद ६-११-४, ६-१३०-१ में अप्सरा के अर्थ विद्युत् हैं। अथर्व० ६-११८-१ में अप्सरा सूर्य की किरणें हैं।

ऋग्० १०-१२३-५ में इसे स्वर्ग की परी कहा है। ऋग्० १०-११-२ में ग्रिफ़िथ ने इसके अर्थ जल की परी किये हैं।

हमने यह वर्णन संक्षेप से दिया है। और भी कई मन्त्र हैं जिनमें इनका वर्णन आता है। इनके भिन्न-भिन्न अर्थों का जानना आवश्यक है।

महात्मा आनन्द स्वामीजी महाराज
कृत पुस्तकें

१. महामन्त्र
२. तत्त्वज्ञान
३. प्रभुदर्शन
४. प्रभुभक्ति
५. सुखी गृहस्थ
६. बोध कथाएँ
७. एक ही रास्ता
८. घोर घने जंगल में
९. यह धन किसका है
१०. मानव जीवन गाथा
११. भक्त और भगवान्
१२. प्रभु मिलन की राह
१३. मानव और मानवता
१४. आनन्द गायत्री कथा
१५. शंकर और दयानन्द
१६. उपनिषदों का सन्देश
१७. वैदिक सत्यनारायण कथा
१८. महात्मा जी का जीवन चरित्र : लेखक श्री रणधीर

महात्मा आनन्द स्
कृत धार्मिक क

- तत्त्वज्ञान
- प्रभु-दर्शन
- प्रभु-भक्ति
- मानव जीवन गाथा
- भक्त और भगवान
- वैदिक सत्यनारायण व्रत कथा
- भगवान शंकर और दयानन्द
- आनन्द गायत्री कथा
- एक ही रास्ता
- घोर घने जङ्गल में
- महामन्त्र
- सुखी गृहस्थ
- प्रभु मिलन की राह
- यह धन किसका है
- मानव और मानवता
- बोध कथाएँ
- उपनिषदों का सन्देश
- दो रास्ते

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली

मुद्रक प्रकाशक विजय कुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस, नई सड़क, दिल्ली में मुद्रिक कर वेदप्रकाश कार्यालय ४४०८, नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया ।